उपहार

विषय-सूची

—: o :—

प्रकाशक के नाते—

—:o:—

हास्य-रस की पुस्तकों का हिन्दी-साहित्य में नितान्त अभाव देख कर हमने इस विषय की कतिपय पुस्तके प्रकाशित करने का निश्चय किया था। इस माला की दो पुस्तके "राजा साहब" तथा "कुमकुमे" पाठकों ने अपना कर हमारा उत्साह भी बढ़ाया था, जिससे प्रोत्सासित होकर ही यह तीसरी पुस्तक हम उपस्थित कर रहे है। शौकत साहब का स्थान आधुनिक हास्य-रस के लेखकों मे अन्यतम है और उनकी रचनाएँ हिन्दी मे बड़े आदर से पढ़ी जाती है। "कर्मयोगी" मे वे प्राय. नियमित रुप से लिखा करते थे। सन् १६४६ मे एक विशेष कॉन्ट्रेक्ट के द्वारा कुछ धारावाहिक चीजे लिखवाने का प्रबन्ध हुआ था जिसमे "इन्कलाव जिन्दाबाद" भी एक था। "भाई साहब" भी धारावाहिक रुप से प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई थी पर हमारे दुर्भाग्य से शौकत साहब भी पाकिस्तान पहुँच गए। दर्जनो पत्र भेजने पर भी उनका पता न चला और न हमे उनसे कोई उत्तर ही मिला·फलत यह दोनों कहानियाँ अधूरी रह गई। सन्तोप केवल इतना ही है कि इनका जितना अंश प्रकाशित

हुआ था वह सर्वथा स्वतंत्र है और साथ ही उपदेशप्रद भी। इन्हीं सब रचनाओं का यह संग्रह है और तीन-चार कहानियाँ मौलिक भी। हमें आशा है पाठकों का इससे काफी मनोरंजन होगा और सदा की भाँति वे इसे भी ख़ूब पसन्द करेंगे।

पड़ौसी
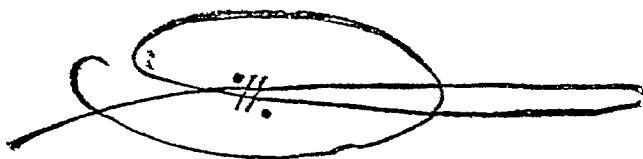
सुबह के वक्त 'शेव' करने के लिए आइने का मुँह सीधा किया ही था कि उसमें बजाए अपने, हमसाई की मुलाज़िमा का अक्स (प्रतिबिंब) नज़र आया, पीछे मुड़ कर देखा तो वह खड़ी दुपट्टा चबा रही थी। हमने पूछा—"क्यों क्या है ?"

बहुत ही लजाकर उसने कहा—"बीबी ने सलाम कहा है कि नाचो नाचो प्यारे मन के मोर..."

हमने एकदम से नारा बलन्द किया—"ऐं ! क्या मुझसे कहा है, यह मुझ से कहा है ?"

बेगम यह नारा सुन कर हमारी तरफ आते हुये बोलीं—"क्या बात है ?"

हमने कहा—"कुछ नहीं, कोई बात नहीं, आप एक पान बनाती लाइये और फिर उस मुलाज़िमा से कहा—"क्या कहा है बीबी ने ?"

उस बदतमीज़ ने फिर उसी मश्कूक (संदिग्ध) अन्दाज़ के साथ कहा—"बीबी ने कहा है कि नाचो नाचो प्यारे मन के

मोर वाला रिकॉर्ड दे दीजिये थोड़ी देर के लिए, नन्हें मियाँ मचल रहे हैं, अभी वापस कर देंगी।"

हम 'लाहोल' पढ़ते हुए रिकॉर्डों की अल्मारी की तरफ़ गए, वहाँ पान लिए बेगम पहले से मौजूद थीं। अब चूँकि उनको बता देने में कोई हर्ज न था, लिहाज़ा हमने साफ़-साफ़ कह दिया कि आप की हमसाई साहिबा ने 'नाचो नाचो प्यारे मन के मोर' वाला रिकॉर्ड माँगा है।"

बेगम ने जलकर कहा—"उनको तो हमारे पड़ोस की वजह से अपनी किसी ज़रूरत की चीज़ खरीदने की ज़रूरत ही नहीं रही है। बिजली की इस्तरी मँगाई, जला कर नाश कर दी, रेडियो देख गई थी लिहाज़ा इसी ज़िद में चन्द दोस्तों को चाय पर बुला लिया और हमारा रेडियो मँगा भेजा। सिलाई की मशीन माँग-माँग कर छकड़ा कर दी है। उस दिन दावत में डिनरसैट् मँगाया, एक डोंगी तोड़ कर सैट बेकार कर दिया।"

वह यह तफ़सीलात बता ही रही थीं कि दर्वाजे पर दस्तक हुई और जो हम लपक कर बाहर पहुँचे तो देखा उनही हमसाई के शौहर खड़े हैं—"आदाब अर्ज़, कहिए मिजाज़ तो अच्छा है। ज़रा एक घण्टे के लिए बाईसिकिल चाहिए थी काँजी हाउस तक जाऊँगा, सुना है कि बकरी वहीं है—"

हम वग़ैर कुछ जवाब दिए हुए घर में आकर सर पर हाथ रख कर बैठ गए, दिल ने एक फड़कती हुई चीज़ शुरू कर दी :

रहिए अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो,
हमसुखन कोई न हो और हमज़बाँ कोई न हो।
बेदरो दीवार-सा इक घर बनाना चाहिए,
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो।

बेगम ने लाख पूछा कि आख़िर बात क्या है, क्यों चुप हो गये? मगर हम ख़ामोशी के साथ सर झुकाये बैठे रहे। आखिर दिल ही दिल में एक नतीजे पर पहुँच कर बेगम से तो कहा—"आप ज़रा हट जाइये।" और हमसाई के शौहर को आवाज़ देकर कहा—"डॉक्टर साहिब, आ जाइये अन्दर।" यह दर-असल घोड़ा डॉक्टर थे। डॉक्टर साहिब बदस्तूर अपना हँसता हुआ चाँद-सा मुखड़ा लेकर तशरीफ लाये तो हमने अर्ज़ किया, तशरीफ रखिये मुझे आप से कुछ बातें करनी हैं। डॉक्टर साहिब सवालिया निशान बन कर बैठ गये तो हमने फैसलाकुन अन्दाज़ (निर्णीत ढंग) से बात करने के लिये पहले तो अपने अखलाक (सभ्यता) को लोरियाँ देकर सुलाया, उसके बाद अखलाक़ी जुर्रत (साहस) को जगाया, ज़रा दिल को मजबूत किया, कुछ खँखारे, कुछ कुस्मसाये और आखिर दबङ्ग बन कर कहना शुरू किया—"डॉक्टर साहिब, बात असल में यह है कि मै यह मकान छोड़ रहा हूँ। अगर आपकी नज़र मे कोई और मकान हो तो बताइए मै इस मकान से तङ्ग आ चुका हूँ।"

डॉक्टर साहिब ने कहा—"किस क़िस्म का मकान चाहते हैं आप ?"

हमने दिल की बात कहना शुरू कर दिया—"मकान चाहे कैसा ही हो, मगर उसके चारों तरफ़ दूर-दूर तक आबादी न हो, कोई और मकान ऐसा न हो जिसके रहने वाले अपने को मेरा पड़ोसी कह कर मुझको अपनी तमाम ज़रूरतों का कफ़ील (उत्तरदाता) समझें और मेरी तमाम ज़रूरियात की चीज़ों को मारे मुरव्वत (लिहाज़) के अपना समझें। माफ़ कीजियेगा मुझे घुमा फिरा कर बात करने की ज़रूरत नहीं, मैं ख़ुद आपही से पूछता हूँ कि आपके यहाँ एक बकरी है, आपने कभी मुझको भी देखा है कि मैं आपके यहाँ जाकर यह कहता कि मुझे इस वक़्त ज़रा मग़मूम (दुखी) होने की ज़रूरत है, थोड़ी देर के लिए अपनी बकरी दे दीजिये, या मुझे मालूम है कि आपके गले में यह चाँदी का ख़लाल लटक रहा है। मुझे प्राय: हर रोज़ खाना खाने के बाद ख़लाल करने की ज़रूरत महसूस होती है मगर मैं दियासलाई की तीलियों से, नीम के तिनकों से या चिलमन (चिक्) को तोड़-तोड़ कर यह ज़रूरत पूरी कर लेता हूँ। मगर आपको तकलीफ़ नहीं देता कि ज़रा अपना ख़लाल दे दीजिए। लेकिन आपके यहाँ का अजीब तरीक़ा है, माशाअल्ला आप लोग निहायत शौकीन हैं, हर चीज़ का शौक़ है; बच्चे को ग्रामोफ़ोन का, बेगम को सीने की मशीन का, ख़ुद आपको बाइसिकिल का—"

डॉक्टर साहिब ने कुछ कहने के लिये मुँह खोला ही था कि हमने उनको चुप रहने की ताकीद करते हुए कहा—"मेरी पूरी बात सुन लीजिये। मैं अर्ज़ कर रहा था कि संयोग से आपके घराने के तमाम शौक मेरे और मेरे बाल-बच्चों के हर शौक से मिलते-जुलते हैं। वैसे तो यह बहुत मामूली-सी बात है कि बेगम साहिबा ने 'नाचो नाचो प्यारे मनके मोर' वाला रिकॉर्ड मँगा भेजा है, अख़लाकन् (सभ्यतावश) मुझे भेज देना चाहिये लेकिन आपको क्या मालूम कि इस रिकॉर्ड को भेजने के साथ ही मुझको कितने इन्तजाम करने पड़ेंगे। मैं रिकॉर्ड को हसरत से रुख़सत करूँगा कि संभव है इसकी भी आपके यहाँ वही गति हो जो इस के पूर्वज यानी 'पिया मेंडकी री तू तो पानी में की रानी' वाले रिकॉर्ड की हुई है कि उसके कई टुकड़े आप के इन शब्दों के साथ आ गये थे कि नन्हें मियाँ ज़रा इस पर खड़े हो गए थे। इस हसरत के अलावा मुझे रिकॉर्ड के साथ सूईयाँ भेजनी पड़ती हैं, इसलिए कि मुझे मालूम है कि आप फ़जूलखर्च नहीं हैं, सिर्फ एक रिकॉर्ड के लिए और वह भी उस रिकॉर्ड के लिए जो आपका अपना न हो कभी भी सूईयों की नई डिबिया न खरीदेंगे बल्कि घिसी हुई सूईयों से मेरे ही रिकॉर्ड का नाश करेंगे। सिलाई की मशीन आपके यहाँ ज्यादा मेहमान रहती है और ख़ुद हमारे यहाँ के कपड़े दर्जियों को दिये जाते हैं और यह भी पता चला है कि आपके यहाँ उस मशीन से सिलाई का काम तो लिया

ही जाता है, हाँ नन्हें मियाँ उससे रेलगाड़ी का खेल बहुत शौक़ से खेलते हैं। डिनरसैट मैं आपको भेंट के तौर पर देने वाला हूँ क्योंकि उस की एक डोंगी तोड़ कर मेरे लिये पूरे सैट को आपने बेकार कर दिया है। अब बाइसिकिल आप माँग रहे हैं लिहाजा मुझे दफ्तर जाने के लिये गोया ताँगा ढूँढना चाहिये इसलिये कि अव्वल तो आप काँजी हाउस से वापस ही मुश्किल से आएँगे, दूसरे जब आएँगे तो मुझ पर आँखें निकाले हुये कि अजीब बाइसिकिल है आपकी, मुश्किल से दो क़दम चली होगी कि पंक्चर हो गई। इन तमाम हालात के मातहत अगर कोई मुनासिब-सा मकान आपकी नज़र में हो तो जरूर बताइयेगा।"

डॉक्टर साहिब भन्नाये हुये उठे, ताने के तौर पर कहा—"शुक्रिया आप का।" घर में जाकर चीखे-चिल्लाये और उसके बाद से ऐसा अमन है कि गोया वह हमारे या हमारी किसी चीज़ के पड़ोसी ही नहीं हैं! ऐसी भी क्या बेमुरव्वती ??

बदपरहेज़ी

वैसे मैं पेटू तो नहीं हूँ, मगर इसका क़ायल ज़रूर हूँ कि अगर मरना है ही, तो आदमी भूख से क्यों मरे, खा-पीकर क्यों न जान दे? लोग कहते हैं कि तुम्हारी बीमारी की वजह यही है। और मैं कहता हूँ कि बीमारी के डर से परहेज और फाके करना ख़ुद एक बीमारी है। दवा पीने से मुझको इनकार नहीं, मगर दवा के बाद यह खाओ और यह न खाओ—इस किस्म की बातें आज तक मुझसे न हो सकी हैं, और न हो सकेंगी। अगर इसी बहाने मौत आने वाली है, तो आए और शौक से आए। छोटी-छोटी बीमारियाँ—नजला, खाँसी, बुख़ार वग़ैरह को तो जाने दीजिए। इन बीमारियों का बयान करना और नाम लेना हमारे-जैसे महारोगी के लिए बड़े मुँह छोटी बात है। हमने तो हैज़ा तक में परहेज़ नहीं किया, जब कि डॉक्टरों ने वैकुण्ठ का पासपोर्ट काट दिया था, नब्ज़ें तक डूब गई थीं!

शहर में हैज़े का ज़ोर था। आदमी मक्खियों की तरह मर रहे थे। म्युनिसिपैलिटी वालों के लिए बस दो काम रह गए थे—एक लोगों के टीका लगाना, दूसरे अमरूद, खीरे और

भुट्टे के क़िस्म की चीजों का जहाँ पाना, जमीन में दफन कर देना। गोया आदमियों को हैज़ा दफ़न कर रहा था और फलों और तरकारियों को म्युनिसिपैलिटी। यह तो हाल था हैजे का और यहाँ यह हाल था कि फूट खाने के लिए दम निकला जाता था। आप इसको मेरा गवाँरपन समझें या बदतमीज़ी कि मुझे फूट बहुत पसन्द है। मगर साहब सच तो यह है कि उम्दा क़िस्म के गुड़ के साथ फूट खाना दुनिया की ऐसी न्यामत है कि इसके बाद अगर हैज़ा भी हो जाए, तो हमारे नजदीक कोई हर्ज़ नहीं है। ज़िन्दगी तो मरने के लिए है ही, मगर फूट ऐसी न्यामत के लिए तरस-तरस कर जीना हमारी समझ में नहीं आता। सफेद-सफेद गुड़ और ठण्डा फूट खाने वाले के दिल से पूछिए कि उसको ज़िन्दगी और मौत का फ़र्क भी फूट खाते वक़्त मालूम होता है या नहीं ?

मगर मुसीबत यह थी कि म्युनिसिपैलिटी की रोक-थाम एक तरफ थी और घर में धर्मपत्नी जी म्युनिसिपैलिटी से भी बढ़ कर जैसे हेल्थ-ऑफिसर ही बनी बैठी थीं। फूट का नाम लेते ही, गोल-गोल आँखें निकाल कर बोलीं—"क्या कहा, फूट ? हरगिज़ नहीं ? अगर इस घर में फूट आया, तो अच्छा न होगा। समझे कि नहीं ?"

हमने कहा—"क्यों ज़रा से फल के वास्ते अपने और मेरे दरम्यान फूट डाल रही हो ?'

हमने कहा—"भई, फूट से हैज़ा हो जाता है और टीका का मतलब है कि हैज़ा न हो। तो टीका लगवाने के बाद भी अगर आदमी फूट न खा सके, तो टीका बेकार ही हुआ न ?"

जल कर बोलीं—"अब आपसे कौन बहस करे। मगर टीका भी लगेगा और फूट भी न आने पाएगा, यह सुन रखिए।"

गोया यह तय हो गया कि टीका लगे या न लगे, मगर फूट तो इस घर में किसी तरह आ ही नहीं सकता। अब सवाल यह था कि आखिर फूट कहाँ और किस तरह खाया जाय। सब से पहिले तो फूट को ढूँढना था, इसलिए कि शहर में तो म्युनिसिपैलिटी वाले आने ही न देते थे और अगर आ जाए तो दफ़न करा देते थे। मगर हमारे ऊपर तो फूट का भूत सवार था। बग़ैर फूट के मछली की तरह तड़प रहे थे। आखिर एक दिन अँधेरे मुँह सोकर उठे और बाइसिकिल लेकर तारों की छाँव में ठण्डी हवा खाते हुए शहर के बाहर एक क़रीब के गाँव की तरफ निकल गए। गुड़ की पुड़िया रात ही से जेब में रख ली थी। और इस वक़्त इस पुड़िया से चीटियाँ निकल-निकल कर हमारे अचकन और कुरते के नीचे फैल रही थीं। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद बाइसिकिल से उतर कर अचकन और कुरता झाड़ लेते थे। मगर फिर जब कोई चींटी बग़ल या गरदन वग़ैरह में काटती थी तो बाइसिकिल से उतरना ही पड़ता था। आखिर एक जगह बाइसिकिल रख

कर गुड़ की पुड़िया जेब से निकाली। चींटियाँ इधर-उधर इस तरह भागीं जैसे मजमा पर पुलिस ने लाठी चार्ज कर दिया हो। अचकन उतार कर झाड़ा। कुरता उतारा, बनियाइन उतारी और चीटियों की तरफ़ से पूरा इतमीनान कर लेने के बाद फिर चल खड़े हुए। सूरज निकलते-निकलते हम फूट के एक खेत तक पहुँच चुके थे। किसान से मामला तय करके कुछ पैसे उसे दिये और फूट लेकर एक सायादार दरख़्त के नीचे रूमाल बिछाकर बैठ गये। जेब से गुड़ की पुड़िया और चाकू निकाला। अचकन बिछाकर उस पर ये दोनों चीज़ें रख दीं और रईसो की तरह ख़ूब डट कर फूट खाया—जहाँ तक खाया गया, और आखिर मूछो पर ताव देते हुए घर आ गए।

मुश्किल से बारह बजे होंगे कि घर भर में यह ख़बर फैल गई कि हमको हैज़ा हो गया है। धर्मपत्नी के होश उड़ गए और खुद हमारी भी आँखे खुल गई कि यह क्या ग़ज़ब हुआ। फूट का सारा मज़ा किरकिरा होकर रह गया। चारो तरफ़ मौत दिखाई देने लगी। बहने अलग मछली की तरह तड़पती फिरती थीं। भाई अलग डॉक्टर और हकीम की दौड़-धूप में बद-हवास थे और जिसका सुहाग उजड़ रहा था वह तो जैसे पागल-सी हो रही थी। हालत हर मिनट पर ख़राब हो रही थी। यहाँ तक कि फिर हमको होश भी न रहा कि क्या हुआ और क्या नहीं। बेहोश तो नहीं हुए थे, मगर कमजोरी की

वजह से समझने-बूझने का होश बाक़ी न था। अलबत्ता कानों में लोगों के चुपके-चुपके रोने और एक दूसरे को समझाने की आवाज़े ज़रूर आ रही थीं। डॉक्टरों के आने की भी खबर थी कि वह आते थे, नब्ज़ देखते थे, कुछ आँखे उलट-पलट करते थे और आखिर कोई न कोई नुस्खा लिख कर चले जाते थे। दवाएँ पर दवाएँ दी जा रही थीं और दुआओं का सिल-सिला गोया अलग था।

दूसरे दिन हालत इस काबिल हो गई कि डॉक्टर साहब ने मुस्कुरा कर फ़ीस लेते हुए कहा—"Out of Danger!" सब ने परमात्मा का शुक्र अदा किया और हमने आँखे खोल कर देखा कि हैज़ा तो हमको हुआ था और इस वक़्त नया जीवन जैसे धर्मपत्नी को मिला था। हमको होशियार देख कर बड़ी मुहब्बत से सिर पर हाथ फेर कर बोली—"खुदा ने मेरी दुआ सुन ली।" और यह कह कर आँखों में आँसू भर लाईं। बहन ने इनको हटा कर अपनी दुआ के क़बूल होने की खबरें सुनाई और भाई साहब ने बहुत बड़े तजरबेकार की तरह भारी भरकम आवाज़ में कहा—"असल में देख-भाल का वक़्त तो अब आया है। बहुत सख्त एहतियात और परहेज़ की इनको ज़रूरत है।' इस हालत में भी भाई साहब का यह कहना हमको बुरा मालूम हुआ और सच पूछिए तो हमारे ख्याल में यह वक़्त था खिलाने-पिलाने का, जब कि पेट पिचक कर चपाती हो गया था और भूख के मारे बुरा हाल था। मगर

मालूम हुआ कि डॉक्टर साहब ने सिर्फ अनार का अर्क बताया है। अनार का अर्क ऊँट के मुँह में जीरे के बराबर भी नहीं होता। अगर सिर्फ पानी पीकर आदमी जिन्दा रह सकता, तो हिन्दुस्तान के लिये बस दो-तीन दरिया ही काफी थे। इतने ग़ल्ले और इतनी काश्तकारी की जरूरत ही क्या थी?

एक दिन अनार का अर्क पिया, दो दिन अर्क पिया, मगर आखिर कब तक? आमों की फसल यों ही निकली जा रही थी। इससे बढ़ कर आदमी की बेवकूफी और क्या हो सकती है कि वह आमों की फसल में अनार खाए। मगर डॉक्टर साहब ने कह रक्खा था कि आम इनके लिए जहर है; और हम थे कि इस 'जहर' को खाने के लिए दम ही निकला जाता था।

रात का सन्नाटा था। सारी दुनिया मीठे-मीठे स्वप्न देख रही थी और हम मीठे-मीठे आमों के अरमान में जाग रहे थे। अलमारी से आमों की भीनी-भीनी खुशबू आ रही थी। उम्दा किस्म के दसहरी आम अलमारी में चुने हुए महक रहे थे और इनकी खुशबू पर दिल लोट-पोट हुआ जाता था। हमने सोचा, इस वक्त कौन देखता है। दिल ने कहा कि नहीं चोरी बुरी बात है और बदपरहेजी से नुकसान पहुँचने का डर है। आँखों के सामने आम की तसवीर खिंच गई जिस पर Poison का लेबुल लगा हुआ था। दिल ने कहा कि डॉक्टर

ने कह दिया है कि आम इनके लिए ज़हर है, हमने कहा कि डॉक्टर झूठा है। अमृत को ज़हर कहता है और अगर अमृत खाकर कोई मर सकता है तो खैर, हम भी मर जाएँगे। मगर आम न खाकर ज़िन्दा रहने से आम खाकर मरना हर हालत में अच्छा है। बिस्तर पर करवट ली। चारपाई बोली—"चर्र चूँ!" हम फिर चुप हो रहे और सोने वालों को देखते रहे कि कोई जागा तो नहीं है। हर तरफ़ से इतमीनान कर लेने के बाद बिस्तर से उठे। सब बे-ख़बर सो रहे थे। एड़ी उठा कर पावों के बल रेंगते हुए अलमारी तक पहुँचे। अलमारी को खोला तो उसका पट बोला—"चर्र चूँ!" हम जल्दी से वही पर बैठ गए। भाई साहब ने करवट ली और फिर खुर्राटे लेने लगे। हाथ बढ़ा कर एक आम उठाया; चाकू कौन ढूँढता। फिर परमात्मा ने दाँत आख़िर किस वास्ते दिए हैं। यों ही भँभोड़ कर आम को चट कर गए। फिर दूसरा, फिर तीसरा और आख़ीर में हमारे सामने सात आमों की गुठलियाँ पड़ी हुई थीं। पेट भी कुछ-कुछ भर गया था। जी तो और भी चाहता था, मगर हमने परहेज के ख्याल से नहीं खाए। छिलके और गुठलियाँ उठा कर बाहर उछाल दीं और बिस्तर पर आकर लेट गए। सुबह तक मरने का इन्तज़ार किया, मगर अब तक जिन्दा हूँ। अगर डॉक्टर साहब के कहने से आम ज़हर बन गया होता, तो हमको मर जाना चाहिए था। मगर अमृत अमृत ही रहा। अलबत्ता अब जब

कभी अपनी इस चोरी और बदपरहेज़ी का क़िस्सा सुनाते हैं, तो सभी इस तरह घूर-घूर कर देखते हैं, जैसे उनको हमारे ज़िन्दा रहने का यक़ीन ही नहीं है और हम जो हैज़ा के बाद आम खाकर ज़िन्दा रहे हैं, तो ज़िन्दा रहना भी जैसे झूठ है!

आँचल

जिसका परदेश ही देश हो वह अपने कन्धे पर अपना मकान तलाश नहीं करता बल्कि खानाबदोशी पर ऐसा इतराता है, गोया इसी से देश के सभी अधिकार प्राप्त करके रहेगा। मालूम नहीं यह बात हमने अङ्गरेजों से सीखी है या हर इन्सान स्वाभाविक रूप से अनुभव किए बिना अङ्गरेज होता है। जो भी हो हालत यह है कि अट्ठाईस वर्ष तक लखनऊ में मेहमान रहे, देश विदेश और विदेश देश बनता रहा। परायापन अपना लिया, नाम के साथ 'थानवी' लिख-लिख कर लखनवी बनते रहे। इसी मुसाफिरखाने में पढ़े-लिखे, इसी सराय में शादी-विवाह से फारिग हुए, इसी डाक-बङ्गले में बच्चों के बाप तक हो गए। और ऐन उस वक्त जब कि लखनऊ प्रायः स्वदेश ही बन चुका था, पुरानी खानाबदोशी ने फिर करवट ली। पाँव के शनिश्चर ने 'परिव्राजक' बनाया और अब जो आँख खुली तो हम लाहौर में थे।

लाहौर आकर नया दाना, नया पानी, नये आदमी, नये जानवर, यहाँ तक कि अदब भी नया मिला। परन्तु निश्चित

था कि इस नए नवीले 'परिव्राजक' को पुराने बाल-बच्चों के साथ घर बना कर रहना है।

"फिक्रे आशियाना" कहिये या "आरजूए दौलतखाना" संक्षेप में यह कि सर छुपाने के लिए जगह की जरुरत थी। ज्ञात ही है कि एक परदेशी इस प्रकार के जानकारी के काम नहीं कर सकता लिहाज़ा नए हितैषियों और पुराने मित्रो से इस शुभकार्य में सहायता प्राप्त करने के लिए प्रस्थान किया। सब से पहले जिन महानुभाव का द्वार खटखटाया गया उनसे जान-पहचान कुछ ऐसी-वैसी न थी—हम दोनों, हमारे पिता जी भी आपस में दोस्त थे। हमको देखते ही "अखाह !" का हर्ष-नाद करके लिपट गए। पहले कुरसियाँ निकलीं, फिर शिकञ्जवी की वर्षा आरम्भ हुई, फिर सिग्रेटो के ओले बरसे, संक्षेप में यह कि अजीब और मनोहर भेंट थी, हृदय प्रसन्न हो गया, परदेश में ऐसे चिरपरिचित प्रेमी से मिलन बड़ा ही सुखप्रद था। मकान तो मकान उनसे तो हम यदि जान भी माँगें तो वह आपत्ति नहीं कर सकते। होटल में ठहरने ही पर ऐसे रुष्ट हुए कि बड़ी मिन्नत से माने, कहने लगे, "अच्छा खाना कल साथ खाओ।"

अर्ज़ किया—"भाई जान मैं मेहमान बन कर नहीं आया हूँ, 'वबाले जान' बन कर हाज़िर हुआ हूँ।" यह कह कर तमाम हालात सुना दिये कि अब स्थाई तौर पर यहाँ रहना है, और जब 'टीप का बन्द' अर्ज़ किया कि शीघ्र ही मकान

दिलवाइए ढूँढ कर तो एकदम प्रसन्नता से खिली हुई मुखाकृति खिन्न होकर रह गई। देर तक आकाश की ओर देखते रहे मानो हमारे लिए स्वर्ग में मकान तलाश हो रहा है। सीटी बजाते रहे, जैसे अपने कुत्ते से मकान का पता पूछेंगे। सर पर हाथ फेरा, कुछ मुँह टेढ़ा किया, एक लम्बी-सी ठण्डी साँस लेकर बड़े विचार मग्न की-सी आकृति में बोले—"मकान ?"

अर्ज किया—'जी हाँ मकान, यही जो मकान होता है न, रहने-सहने के लिए यानी किराए का मकान, यही पचास-साठ रुपए किराए का हो !"

उसी ढंग से फर्माया—"यह तो ठीक है परन्तु मैं सोच रहा हूँ कि मकान तो आजकल बड़ा प्रॉब्लम है, बहरहाल..."

बेताबी से अर्ज़ किया—"क्या बहरहाल ?"

अरशाद हुआ—"मतलब यह कि ग़ौर करूँगा।"

आश्चर्य से पूछा—"ग़ौर किस बात पर करोगे, यानी यह कि मुझे मकान दिलवाना चाहिए या नहीं। कान खोल कर सुन लो कि मुझे मकान शीघ्र चाहिए।"

गम्भीरता से विचार करने के बाद फर्माया—"बड़ा प्रॉब्लम है साहिब बड़ा प्रॉब्लम, बहरहाल और लोगों से भी कह रक्खो और मैं भी कोशिश करता हूँ।"

इन हजरत के वादे में हमें वादा कम और सद्वृत्ति अधिक दिखाई दे रही थी, अतः हमने भी सचमुच ही दूसरे लोगों से कहने का ईमान्दारी से संकल्प कर लिया परन्तु मुसीवत यह थी कि पहले लोग ढूँढे जाएँ फिर उनसे कहें कि मकान ढूँढो। लेकिन वह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि "जिन ढूँढा तिन पाइयॉ—" एक तो मिले होटल के गाइड, यह गर्ल-गाइड की किस्म के अधिक तत्पर और हमदर्द से आदमी है। विशेषत. हमारे साथ तो स्टेशन पर इस सद्भावना से मिले थे कि इन का बस चलता तो कुली के स्थान पर स्वयम् सामान उठा लेते। जब मिलते बराबर कुशलमंगल पूछ लिया करते थे, और "कई सेवा ?" का बराबर आग्रह किया करते थे। आखिर हमने उनसे अर्ज कर दिया कि—"भाई साहिब सब से बड़ी 'सेवा' तो यह है कि मकान दिलवाइए कोई।"

पहले तो वह मुँह खोल कर इस तरह रह गए मानो इस समय हमको आँखों की अपेक्षाकृत मुँह से घूर रहे हैं, फिर बड़े विस्मय से बोले—"मकान? यानी मकान? आखिर क्यों ?"

हमने अपना आशय बताते हुए कहा—"भई रहना है ना। इसलिए मकान चाहिए है हमको।"

कुछ डरे हुए अन्दाज से फर्माया—"आखिर आप को होटल से क्या शिकायत है ?"

हमने समझ कर बड़े जोर से कहा—"ओ हो, आप ग़लत समझे, होटल की बात नहीं है। मुझे अब स्थाई तौर पर

लाहौर में रहना है। बाल-बच्चों को बुलाना है। इसलिए किराये का मकान चाहता हूँ।"

गाइड् साहिब ने अब फिर से इस विषय पर विचार करते हुए कहा—'हुँ हूँ वो गोया मकान! मगर साहिब मकान—"

हमारे दिल ने समस्यापूर्ति कर दी-"बड़ा प्रॉब्लम—"

गाइड् साहिब कह रहे थे—"परन्तु यह जल्दी का काम नहीं है। फिल्हाल आप होटल मे ही रहिये, मै बराबर मकान की फिक्र रक्खूँगा।"

ज्ञात ही है कि इन महानुभाव ने केवल अपने होटल के कारण यह बात टाल दी थी, इनको हमारे मकान से अधिक होटल की चिन्ता होनी चाहिये थी। उनसे हमारी यह मॉग ही अनुचित थी। परन्तु स्वार्थी अन्धे तो होते ही है, साथ ही साथ मूर्ख भी बनने की दौड़-धूप करते हैं। खैर यही क्या कम है कि हमे अपनी इस मूर्खता का शीघ्र ही अनुभव हो गया। चुनाञ्चे अब की बार हमने समझ-बूझ कर एक ऐसे व्यक्ति से मकान के लिए कहा, जिसके निर्वाचन पर स्वयम् हमको घमड है। चश्मा लगा कर आँख की कमजोरी की घोषणा करने का अर्थ यह नहीं कि निर्वाचन दृष्टि भी कमजोर है। हुआ यह कि

जवाबी तार आया था इसी होटल के पते पर कि फौरन कुशल समाचार भेजो। तरीक़ा यह है कि तार वाले को कुछ न कुछ इस बात का इनाम दिया जाता है कि वह किसी के

मरने का तार नहीं लाया। चुनाञ्चे हमने भी पूर्वजों की इस प्रथा को कायम रक्खा, तार वाला था शरीफ़ आदमी। "इसकी क्या जरूरत है साहिब जी" कह कर हाथ फैला दिया। हमने कहा—"यह तो खैर यूँ ही है, अगर मकान दिलवाओ कहीं से हमको तो निसन्देह इनाम देंगे। उसने चश्मे की ओट से हमको इस प्रकार देखा, जैसे यह विचार कर रहा हो कि इस मनुष्य का मकान में रहना ठीक कहा जा सकता है या पिंजरे में रहना, फिर तार की भाषा में फर्माया—"मकान—अच्छा जी।" तार के मजमून को वही समझ पाता है जिससे सम्बन्ध हो, अन्य लोग जरा कम समझते हैं। परन्तु हम ठहरे व्यवहार कुशल: फौरन समझ गये कि इस का मतलब क्या है। वह बेचारा सलाम करके चल दिया और हम फिर उन लोगों की तलाश में निकल गये जिनके विषय में मकान के सिलसिले में जरा भी सन्देह हो सकता था। विस्तृत बातें जाननी न आपके लिए चित्ताकर्षक होंगी, न मैं अपनी निजी बातें बताने का शौकीन हूँ। हाँ इतना बताये देता हूँ कि एक लस्सी वाले से मकान के लिए कहा और केवल यही कहने के लिए लस्सी का एक गिलास पीना पड़ा, एक हेयरकटिङ्ग सैलून में मकान की अपील करने के लिए बाल बनवा डाले। एक ताँगे वाले के चेहरे पर 'टु-लैट' का सायनबोर्ड दिखाई दिया अतः एक घण्टे का किराया उसको दे दिया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन यहाँ तक कि इसी अन्वेषण में सुबह होने लगी

और शाम होने लगी। लेकिन मकान न आज मिलता है न कल। मिली मिलाई अच्छी खासी नौकरी छोड़ कर भागने की ठानी। अपने मालिक से भी मकान की मुश्किल के मुकाबिले में मुलाजमत (नौकरी) से हट जाने को सहल बता दिया। इस सिलसिले में 'प्रॉब्लम' का शब्द इतना अधिक सुनने में आया कि अब तो यह सन्देह होने लगा था कि कही पञ्जाबी भाषा में अङ्गरेजी के इस शब्द का अर्थ मकान ही तो नही है।

अन्वेषण मे एक समय ऐसा भी आता है जब अन्वेषक थक कर बैठ रहें और वाञ्छित वस्तु स्वयम् उसे ढूँढने निकले। चुनाञ्चे हम इस कमाल को भी अंत मे पहुँच ही गये। घर को एक पत्र लिख दिया कि नौकरी मिल गई है परन्तु तुम सबको छोड़ना पड़ेगा, इसलिए कि मकान नही मिलता। विचार कर लिया कि किसी होटल ही को अपना यतीमखाना बनायेगे। एक होटल से वातचीत भी कर ली। अब ईश्वर की देन देखिए कि मकान मिलने शुरु हो गए। सब से पहले गाइड साहब ने एक मकान के मिलने का शुभ संदेश सुनाया। हमने उनको कलेजे से लगाते हुए अर्ज किया-"यूँ नहीं साहिब, पहले आप यह कीजिये कि कल प्रातः चाय मेरे साथ पीजिये, इसके बाद हम दोनों चलेंगे मकान देखने।" वह शांति-दूत तो थे ही, हमारे प्रेम को भला कैसे ठुकराते, वादा करके चले गये। लाहौर आने के बाद आज पहली बार अनुभव हो रहा था कि इस परदेश ने इतने दिनों के बाद हमारा मनुष्य होना स्वीकार

किया है। सर से एक भार उतर चुका था। पहले मकान के विषय में सोचा करते थे, अब उसकी सजावट के सुख स्वप्न देखने लगे। एक कमरा बनाएँगे 'स्टडी' का, उसमें लिखने की मेज़ पर कोई फ़जूल (निरर्थक) सामान न होगा, हाँ एक बड़ा शीशा जरूर होगा। सोने का कमरा जरा लालसापूर्ण होना चाहिए कि आदमी जागे तो भी स्वप्न-सा देखता रहे, या स्वप्न देखे तो क़ब्रस्तान आदि के नहीं बल्कि जरा अच्छी क़िस्म के। इसी प्रकार हर कमरे की एक कल्पना हमारी आँखों के सामने थी, दिल तो खुश था ही, निश्चय किया कि चलो आज 'पिक्चर्स' चलें शायद ड्राइङ्गरूम का कोई नया सैटिङ्ग नजर आ जाये, कपड़े पहनते गुनगुनाने लगे :

इक बङ्गला बने न्यारा

होटल से निकलते ही वही ताँगे वाला लपक कर सामने आगया और बोला—"वाह बाबूजी! एक मकान आपके लिए ढूँढा है, तो अब आप नहीं मिलते, कल किसी समय देख लीजिये।"

हमने सोचा, देखें मकान या न देखें! गाइड साहिब को अगर खबर हो गई कि यह परायों के साथ मकान देखने गया था, तो बुरा मान जाएँगे परन्तु इस बेचारे ने भी प्रेम ही के कारण हमारा ध्यान रक्खा है। अतः क्या बुराई है अगर हम चुपके से मकान देख आँये। कुछ विचार करने के बाद

कहा—"कल नहीं इसी समय चलो तो चल सकते हैं, कल हमको और मकानात देखने हैं।" दिल बड़ा हो तो मकान को आदमी मकानात कहने लगता है। यह एकवचन और बहुवचन के नियम की उपेक्षा नहीं, भावनाओं की व्याकरण से अवहेलना है। ताँगे वाला तैयार हो गया और हम उसके ताँगे पर रवाना हुये। चलते-चलते शहर के तमाम मुहल्ले एक-एक करके विदा होने लगे। यहाँ तक कि लाहौर की तमाम आबादियाँ समाप्त हो गईं परन्तु हमारे 'दौलतखाने' का कहीं पता नहीं, ताँगा है कि चल रहा है, और हम हैं कि बैठे हुये हैं। एक बार विचार किया कि इससे पूछे तो सही कि आखिर इरादा क्या है। परन्तु फिर स्वयम् ही अपने इस इरादे पर शर्मा कर रह गये कि इस बेचारे ने तो हमारे प्रेम के कारण दूर तक खाक छानकर हमारे लिए मकान ढूँढा है और हम इसके सम्बन्ध में यह विचार कर रहे हैं कि ज़रा से फॉसिले को ही देख कर घबरा गये। लाहौर मे इसको मकान न मिल सका तो इसने किसी और शहर मे सही, बहरहाल मकान ढूँढ तो दिया। आखिर ख़ुदा-ख़ुदा करके अब उसने सड़कों को छोड़ कर गलियाँ दरयाफ्त की। एक गली से दूसरी में, दूसरी से तीसरी में और तीसरी से चौथी में जाकर एक जगह ताँगा रोक कर कहा—"यह है सामने वाला मकान।"

हमने आश्चर्य से चारो ओर देख कर पूछा—"कौन-सा मकान?"

इतमीनान से कहने लगा—"वह जो टाट का पर्दा सामने पड़ा है न, बस उसी के अन्दर एक तरफ को मकान है।"

हमने उस टाट के पर्दे को देखा तो एक जल-डमरू मध्य (आवनाए) पर इस प्रकार पड़ा हुआ था मानो जहाज डूब चुका है, केवल उसका फरेरा बाकी रह गया है। चारों ओर कीचड़ ही कीचड़ और यहाँ तैरना आता नहीं था। मरते खपते दीवार से चिपके हुए उस टाट के पर्दे तक पहुँचे और अन्दर जो झाँक कर देखा तो चौदह भुवन दृष्टिगोचर हो उठे। मकान की मालकिन बड़ी-बी अपनी बकरी से कान में कुछ कह रही थीं ताकि इनकी मुर्गियाँ न सुनने पाएँ। हमको देखते ही अन्दर बुला लिया और मकान देखने का कारण मालूम करने के बाद बोलीं—"यही है बेटा मकान देख लो, मेरा क्या है मैं एक कोने में पड़ी रहूँगी।"

वहाँ से जो भागे हैं तो होटल के पास पहुँच कर उस समय होश ठिकाने आये जब ताँगे वाले को साढ़े तीन रुपये मकान के दर्शन कराने की दक्षिणा देनी पड़ी। परन्तु निश्चिन्तता थी कि यह मकान तो दिल्लगी में ही देखा है, असल मकान तो कल देखेंगे गाइड् साहिब के साथ।

सुबह गाइड् साहिब ने चाय पीकर जब हमें दर्शन दिये तो मकान दिखाने ले चले। यह मकान, अवश्य किसी समय मकान था सम्भवतः नानाफड़नवीस के ज़माने में इसकी पहली

बार मरम्मत हुई थी। आसानी यह थी कि इस मकान में रह कर मनुष्य उस घमण्ड को भूल सकता था, कि वह संसार के सभी प्राणियों से बढ़ कर है। गाइड् साहिब ने नाम के साथ 'थानवी' देखकर शायद यह अनुमान लगा लिया था कि इन 'हज़रत' को अस्तबल दरकार है। सूर्य की किरणों से आँखों को जो कष्ट होता है, उसके पूरे बचाव का इन्त-ज़ाम था, हवा लग जाने से जिन रोगों की सम्भावना हो सकती है, उनका भी कोई खतरा न था, हर कमरा गुसलखाना और हर गुसलखाना आसानी से कमरा बन सकता था। नमी इतनी थी कि खस की टट्टियों का खर्च आसानी से बचाया जा सकता था। हर कमरे का फर्श ऐसा कि चाहे खेती-बाड़ी शुरू कर दीजिए, चाहे बग़ीचा लगा लीजिये, संक्षेप में यह है कि हमने मकान देखने के बाद गाइड् साहिब का मुँह जो देखा तो दोनों में ज़रा भी अन्तर न था। वह भी अजीब 'आसारे कदीमा' बने हुए खड़े थे। तुर्रा यह कि हमको अपनी ओर देखते हुए देख कर फर्माया—"क्या राय है?"

हमने कहा—"मकान के विषय में तो बाद में अर्ज करूँगा, पहले तो मुझे यह पूछना है कि आपकी क्या राय है मेरे बारे में?"

साफ़गोई तो देखिए, कहने लगे—"आप अच्छे रहेंगे इसमें।"

हम अपने को संभालते हुए इस मकान से बाहर निकल आये, और इसके बाद से गाइड साहिब की सूरत से ऐसी घृणा हुई है कि अगर मकान फ़ौरन मिल न जाता तो 'अहिंसा' पर अधिक देर तक विश्वास नहीं रह सकता था, जेल में रहने का इन्तज़ाम हो ही जाता। शुक्र है कि सबसे पहले दोस्त ने आख़िर एक जगह तलाश कर दी और हमसे दोस्ती के नाम पर अपील की कि हम इस जगह को मकान समझें। इसमें कमरे भी हैं, दर्वाज़े भी, छत भी है और ग़ुसलखाने भी। कोठरियाँ भी है और बावर्चीख़ाने भी। परन्तु मालूम नहीं क्या बात है कि सब मिलाकर उसे मकान नहीं कहा जा सकता, हाँ कहिये तो 'प्रॉब्लम, कह दिया करें।

अब सुनिये अन्य प्रॉब्लमों की रेल-पेल :

"मकान तो मिल गया है, अब मुलाज़िम दिलवाइये।"

"जी क्या कहा, मुलाज़िम ? यह तो बड़ा प्रॉब्लम है।"

"मकान और मुलाजिम तो आपकी दुआ से मिल गये हैं, हाँ ज़रूरत की और चीज़े नहीं मिलती जैसे घी।"

"घी—? घी तो बड़ा प्रॉब्लम है।"

"अच्छा साहिब 'डाल्डा' सही, हम वनस्पति आदमी बन कर रह लेंगे परन्तु शक्कर।"

"शक्कर यानी चीनी चाहिये है आप को ?' साहिब चीनी तो बड़ा प्रॉब्लम है।"

"मैने कहा चीनी के लिये मैने कार्ड ले लिया है भई कोयला या लकड़ी कहीं से दिलवाइये।"

"खुदा जानता है, इसी चिन्ता में अभी घर से निकला हूँ यह ईंधन का मामला बड़ा प्रॉब्लम है।"

सन्क्षेप में यह कि जो चीज है प्रॉब्लम, जो बात है प्रॉब्लम। तालीम इसी प्रॉब्लम के नयाद होने के कारण छोड़ी, अब लाहौर भी यह प्रॉब्लम छुड़वायेगा। मुसीबत तो इस प्रॉब्लम कम्बख्त में यह है कि हल हो जाये तो प्रॉब्लम, न हल हो तो प्रॉब्लम। पहले तो सब्र कर लिया था कि शायद सिर्फ मकान को पंजाबी मे प्रॉब्लम कहते हैं परन्तु अब तो मालूम होता है कि पजाब प्रॉब्लम कहना पड़ेगा, जहाँ इन प्रॉब्लमो के मारे हम खुद ही हल हुये जाते हैं।
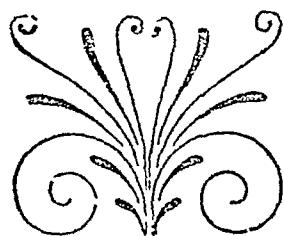
घर का डर

शरीफ आदमी की सबसे बड़ी पहचान यह है, कि वह अपनी घरवाली से डरता हो! हम शरीफ आदमी हैं, इसलिए नहीं, कि शरीफ माता-पिता के सपूत हैं; बल्कि इसलिए भी, कि अपनी श्रीमतीजी से डरते हैं, और जहाँ उनका ध्यान आया, कि मानो ख़ून ही तो ख़ुश्क हो जाता है। करने को दुनिया की सब बुराइयाँ करते हैं, मगर शरीफ आदमियों की तरह, यानी श्रीमतीजी से डरते हुए! हमारे दोस्त कैलाश को हमारी बस यही बात बुरी लगती है। उसका कहना यह है, कि स्त्री से डरना वीरो का काम नहीं है। हमने कहा कि भैया, तुम हमको वीर न जानो; हम डरपोक ही सही, पर घर वाली का डर तो दिल मे कुछ ऐसा बैठ गया है, कि उसके सामने सारी वीरता धरी रह जाती है। यूँ कहो, तो शेर के जबड़े में हाथ डाल दें, मगरमच्छ के दाँतो पर जलतरङ्ग की एक-आध गत बजा कर सुना दें, साँप की टाई बाँध लें, आग में कूद पड़ें, समुद्र में फाँद जाएँ, पहाड़ की चोटी से खड्ड में क़लाबाजी खा जाएँ, कम्बल की जगह रीछ को ओढ़ कर सो रहें, सौ-पचास बदमाशों में लट्ठ ले कर घुस जाएँ, तोप के

गोलों का नाश्ता किया करें, हवाई जहाज से बग़ैर छतरी लगाए फाँद पड़ें। यह तो सब कुछ कर सकते हैं; पर तुम यह जो चाहो कि घर वाली के सामने जा कर मूँछों पर ताव दे कर और आँखों में आँखें डाल कर यह कह दें, कि हम ह्विस्की पी कर आए हैं और दाँव लगा कर ब्रिज खेलने जा रहे हैं, तो यह वीरता हमसे तो नहीं हो सकती।

बात सारी यह है, कि कैलाश को बीबी मिली है ऐसी, जो आते ही दब गई थी। ग़रीब घर की लड़की थी, इनके घर आ कर बिजली की रोशनी और मेज़-कुर्सी को देख कर सहम ही तो गई! फिर स्वामी जी ने कुछ बढ़-चढ़ कर अकड़ दिखाई होगी। ऐसे पति जब अपनी भोली-भाली पत्नी पर रोब जमाना चाहते हैं तो नौकरों पर चीख-पुकार शुरू करते हैं। कुछ चीनी के बरतन और शीशे के गिलास तोड़ते हैं, मेज पर घूँसे मारते हैं और हलक फाड़ कर चीखते हैं। बस, जो दब्बैल-किस्म की स्त्रियाँ हैं, वह सदा के लिए दब कर रह जाती हैं; पर हमारे यहाँ तो बात ही दूसरी थी। घर वाली बड़े घर की लड़की है। बिजली की रौशनी में उसने आँखें खोलीं; मखमल के फ़र्श पर घुटनों चली; चीनी के बरतनों के टूटने की झङ्कार सदा सुनती रही, गिलासों के टूटने पर उसकी हँसी कभी नहीं रुकी, और वह आई थी हमारे यहाँ, जहाँ सबसे बड़ी रौशनी की चीज़ हमारी मेज़ का साढ़े चार रुपए वाला लैम्प था, और बाकी घर के लिए दो लालटेनें और थीं, जिनमें से एक की

चिमनी लड़ाई से वापस आने वाले सिपाही की तरह कुछ पट्टियाँ बाँधे हुए थी। घर में फर्नीचर की किस्म की चार चीज़ें थीं—एक हमारी मेज़, जो पिता जी ने अपनी जवानी में किसी नीलाम में ख़रीदी थी, एक हमारी कुर्सी, जिस पर हमारे सिवा कोई और अगर बैठे, तो टाँगें ऊपर हो जाएँ और सिर नीचे, इसलिए कि उसका एक पाया टूटा हुआ था, और हम उस पर बैठ कर बैलेन्स (Balance) सँभाले रहते थे; तीसरी चीज़ एक मोढ़ा था। यह मोढ़ा ख़ुद हमारी कमाई का था, और आने जाने वालों के बैठने का काम देता था। तीसरी चीज़ की तरह चौथी चीज़ भी हमारी ही ख़रीदी हुई थी, मगर उसके पूरे दाम हम अदा भी न कर पाए थे, कि दूकानदार बेचारा मर गया, और यह चीज़ हमको गोया आधे दामों मिल गई। यह चीज़ थी, एक सेकिण्ड हैण्ड आराम-कुर्सी, जिस पर लेट कर हम हुक़्क़ा पिया करते थे और कविता लिखा करते थे। वह आई थी उस घर से, जहाँ हर बात के लिए एक नौकर अलग था। एक घर की सफ़ाई करता था, दूसरा कपड़े पहनाता था, तीसरा बाज़ार से सौदा लाता था, चौथा मोटर साफ़ करता था, पाँचवाँ ख़ानसामा था, छठा बेरा था, सातवाँ ब्वॉय था। और हमारे यहाँ एक हम थे, चाहे हमको वह नौकर समझे, चाहे अपना स्वामी, चाहे हमसे अपना जूता उठवाएँ, चाहे नाज़ चढ़वाएँ। मगर इस लक्ष्मी के घर में आते ही घर की सूरत ही जैसे बदल गई। हमारा ख़रीदा हुआ मोढ़ा जाने क्या हुआ;

पिता जी की निशानी वह नीलामी मेज़ भी ग़ायब ! और हमारी तीन टाँग वाली-कुर्सी का भी पता न चला। आराम-कुर्सी भी इधर-उधर हो गई, और इन सब चीज़ों की जगह बहुत क़ीमती क़िस्म का फर्नीचर आ गया। जगमग करती हुई पॉलिश वाली कुर्सियाँ, लकड़ी में शीशे की तरह मुँह देख लेने वाली मेज़ें, सोफा, तिपाइयाँ, आराम कुर्सियाँ, आल्मारियाँ, शृङ्गार की मेज़, खाने की मेज़, ताश खेलने की मेज़—मतलब यह, कि सभी कुछ इस घर मे आ गया और देखते ही देखते वह घर जिसमें दो लालटेनें और एक लैम्प टिमटिमाया करता था, बिजली की रोशनी से जगमगा उठा ! अब न हमको सवेरे-सवेरे शलजम और चुकन्दर लेने के लिए जाना पड़ता था और न महरी के इन्तज़ार में एक-एक मिनट गिनना पड़ता था कि वह आए तो चौका-बासन हो और भोजन मिले। बिस्तर पर लेटे ही लेटे चाय मिलने लगी। दफ्तर जाने से पहिले मक्खन और टोस्ट, हलवा और मिठाइयाँ सब मेज पर चुने हुए हमारे सामने आने लगे। जिस घर में एक भी नौकर न था, वहाँ चार-चार नौकर हमारे इशारों पर नाचते हुए दिखाई देने लगे। यह सब कुछ तो था, पर एक बात यह भी थी, कि श्रीमतीजी खिलाती तो थीं सोने का निवाला, मगर देखती थीं शेर की नज़र ! क्या मजाल, कि हमको रात के वक़्त बाहर ज़रा देर तो हो जाय। वह मुँह से तो कुछ न कहती थीं, मगर भूख-हड़ताल और मौन व्रत साथ-साथ शुरू हो जाते थे, और

आखिर में हमको इस बुरी तरह नाक रगड़नी पड़ती थी, कि तौबा ही भली! एक तरफ़ तो श्रीमतीजी को खुश रखने की कोशिश और उनके नाराज़ होने का डर था, और दूसरी तरफ़ जेब मे जब रुपया आ जाता है, तो उसी जेब मे शैतान भी अपना घर बना लेता है। वही हम हैं, कि शादी के पहिले ताश के खेलों में गुलाम-चोर, चानस और दृन्द के सिवा कोई खेल ही न जानते थे, मगर अब ब्रिज हमको आ गया था, फ़लाश हम खेलते थे, सोलो मे हमारा जवाब न था. पोकर में बड़े-बड़े उस्ताद हमारा लोहा मानते थे। यह सब रुपए के खेल थे, और रुपए की हमारे यहाँ कोई कमी न थी, जितना चाहें हारते कोई पूछने वाला न था! ताशों का तो हुआ यह हाल, और भी बहुत से शौक, जो अब तक ख्वाब मे भी न देखे थे, हमको शुरू हो गए। दारू के पास भी कभी न फटके थे, मगर अब बग़ैर ह्विस्की के चैन न था। ह्विस्की थी और हम थे, ताशों का जुआ था और हम थे। श्रीमतीजी को इन्हीं दो चीजो से नफरत थी। उन्होंने पहिले ही कह दिया था, कि देखो और चाहे जो कुछ भी करो, मगर एक तो जुआ कभी न खेलना और दूसरे दारू को मुँह न लगाना। हमने उनको यकीन दिला दिया था, कि हमको खुद इन दोनो चीजो से नफ़रत है। मगर अब होता यह था, कि घर से दूर किसी दोस्त के यहाँ सब बे-फ़िक्र-से जमा हैं, ह्विस्की चल रही है और दॉव पर दॉव लग रहे हैं! घर पर श्रीमतीजी समझ रही हैं, कि उनके 'नाथ'

कचहरी में मवक्किल ढूँढ रहे होंगे, मुक़दमों की तलाश में होंगे; मगर यहाँ यह कचहरी लगी रहती थी! दिन-भर ह्विस्की में डूबे और ताशों में घिरे रहने के बाद शाम को घर पहुँचते थे। मगर कैलाश यह चाहता था, कि शाम को भी घर न जाएँ और वह कहता था कि पीने का वक्त शाम का है। बात ठीक थी; पर मजबूरी भी तो कितनी बड़ी थी? बस, इसी बात पर वह दोस्तों में हमको बनाया करता था, कि "यह तो स्त्री-सेवक हैं, पत्नी से डरते हैं! भला पत्नी से भी डरना क्या? एक मैं हूँ, कि मेरी घर वाली मेरे सामने दम भी नहीं मार सकती!"

हमने उसको लाख समझाया, कि "भाई तुम बड़े बहादुर हो, बड़े सूरमा हो, हमारा-तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं! हम इतने आज़ाद नहीं हैं, जितने तुम हो; और न हमारी घरवाली ऐसी 'गऊ' है, जैसी तुम्हारी घर वाली।" मगर वह किसी तरह न मानता था और नाक में दम कर रक्खा था।

कैलाश की बीवी वैसे तो बहुत बेज़बान और बहुत सीधी थी मगर वह भी एक बात में बहुत तेज़ थी, और हम जानते थे, कि उसने भी इन 'सूरमा' के ऐसा नाक में दम किया था कि इनका दिल ही जानता होगा! बात यह थी, कि वह सब कुछ देख सकती थी—कैलाश जुआ खेलें, शराब पीएँ, चाहे जो कुछ भी करें। वह इनमें से किसी बात पर कुछ न कहती थी; मगर कैलाश 'दिल-फेंक' भी बहुत थे, आज इस 'मृग-नयनी' पर जान

दे रहे हैं, तो कल उस सुन्दरी के प्रेम में घुले जा रहे हैं; यहाँ तक कि आखिर एक मन-मोहिनी के पीछे तो ऐसे लट्टू हुए कि तन, मन, धन किसी की भी सुध न रही और उसी के हो कर रह गए! घर वाली को जो खबर पहुँची, तो उसने आफत मचा दी। इस सूरमा ने चाहा, कि इस बात में भी पत्नी को दबाएँ। गुस्सा किया, बरतन तोड़े, चीखा-चिल्लाया—सभी कुछ किया, मगर पत्नी ने एक बात की भी परवाह न की और उसने साफ-साफ कह दिया, कि मैं बस यही बात नहीं देख सकती। अगर तुमसे वह नहीं छूट सकती, तो मैं अपने घर जाती हूँ। खाना-पीना छोड़ दिया, आँखों से गङ्गा-जमना बहा कर रख दी और जान देने पर उधार खा कर बैठ रही! अब तो कैलाश के भी हाथो के तोते उड़ गए कि यह तो काबू ही से बाहर होती जाती है। आखिर उसकी मिनती की, हाथ जोड़े, नाक रगड़ी और जब कुछ बन न पड़ा तो उस मन-मोहिनी से हाथ धो कर बैठ रहे! तब से कैलाश को और तो सब आज़ादियाँ हासिल थीं, मगर इस बात में वह भी दब कर रह गए थे! और तब से अब तक फिर किसी से प्रेम करने की हिम्मत न हुई!

हम लोगो को यह बात मालूम थी और इस सारे झगड़े का पता भी था। हम चाहते थे, कि कैलाश के साथ शरारत न करें, मगर उसने खुद ही मजबूर कर दिया। आखिर एक दिन हमने उससे कहा कि चलो आज रात-भर महफिल जमेगी।

अपने घर पर एक बाहर के मुकदमे का बहाना किया और माथुर के यहाँ चले आए। यहाँ सभी दोस्त जमा थे। ह्विस्की की बोतलों पर बोतलें खाली होने लगीं; फ्लाश भी इतने जोरों का हुआ, कि दिवाली पर भी न हुआ था। नोटों के ढेर रद्दी काग़ज़ की तरह उधर से इधर और इधर से उधर होते रहे! पीने में हमने जान बूझ कर कमी रक्खी मगर कैलाश को ख़ूब पिलाई। रात-भर वह पीता रहा और सवेरे जब वह बेसुध हो कर पड़ रहा तो हम माथुर को साथ लेकर और उसको वहीं पड़ा छोड़ कर पहुँचे उसके घर। घर पर आवाज़ दी, तो भाभी ने जवाब दिया, कि वह हैं नहीं!

हमने कहा—"कुछ आप को पता है, कि कल से कहाँ ग़ायब हैं?"

भाभी आवाज पहिचान कर दरवाजे के पास आ गई और बोलीं—"मुझसे ज्यादा पता तो आपको होगा, कि कहाँ हैं; माथुर जी के यहाँ होंगे और कहाँ होंगे?"

हमने कहा—"माथुर जी के यहाँ? माथुर जी बेचारे तो कल से ख़ुद ही ढूँढ़ रहे हैं!"

भाभी ने कहा—"तो क्या वह माथुर जी के यहाँ नहीं गए?"

हमने कहा—"माथुर जी तो मेरे साथ खड़े हैं। परसों से हम लोगों ने उनकी सूरत भी नहीं देखी!"

माथुर ने कहा—"ख़ैर यह तो न कहो। देखने को तो कल भी देखा था, जब वह मोड़ पर...।"

हमने बात काट कर चुपके से, मगर इस तरह, कि भाभी भी सुन ले, कहा—"चुप रहो जी वह बात न कहो।"

माथुर ने कहा—"हाँ, ठीक है, परसों से उनका पता नहीं है।"

भाभी सुन तो चुकी थीं, कहने लगीं—"मगर कल तो आपने उनको मोड़ पर देखा था।"

हमने कहा—"जो . वह...बात ..यह ..है...कि...कि आपको यह कैसे मालूम हुआ ?"

भाभी ने कहा—"ख़ैर जैसे भी मुझको मालूम हुआ, मगर मोड़ पर और कौन कौन था ?"

हमने कहा—"और...और तो वह थीं। मगर नहीं शायद और तो कोई नहीं था।"

भाभी ने कहा—"देखिए, आप छिपाइए नहीं, मुझे सब पता है। यह बताइए कि मोड़ पर कौन थीं उनके साथ ?"

हमने कहा—'भाभी बात यह है कि मैं कैलाश को वचन दे चुका हूँ। दूसरे यह, कि अब तो राधा के यहाँ वह जाता भी नहीं। कल जाने कहाँ से उसका साथ हो गया था। पर अब यह न समझिएगा, कि कोई ऐसी-वैसी बात है।"

भाभी ने जल कर कहा—"हाँ, और क्या ! कोई ऐसी-वैसी बात भी नहीं और उसके साथ मोड़ पर सैरें भी होती हैं, और रात-रात भर उसके यहाँ रहा भी जाता है !"

हमने कहा--"भाभी देखिए, हम लोगों का नाम न लगे ! हम सीधे राधा के यहाँ जा रहे है उसको ढूँढ़ने, पर कोई ऐसी-वैसी बात मन में न लाएँ ।"

भाभी ने कहा—"अरे छूट चुकी उनकी यह बातें । मगर मैं भी आज धरती हिला कर रख दूँगी । वह आखिर समझे हुए क्या हैं ? जितना-जितना मैं दबी, उतना-उतना उन्होंने दबाया । आने दो अब उनको घर, फिर देखो क्या होता है !"

हमने कहा—"भाभी देखिए, हम लोगो का नाम न आने पाए । हम उन्हीं को ढूँढ़ने जा रहे हैं ।" यह कह कर, हम लोग तो वहाँ से चले आए, मगर फिर कैलाश का दो दिन तक पता न चला । तीसरे दिन जो हम लोग उसके घर गए, तो घर पर कैलाश अकेला था । भाभी न जाने कहाँ थी। अलबत्ता घर उजड़ा हुआ पड़ा था । कोने में कुछ टूटे हुए चीनी के बरतनों का ढेर था, घर पर उदासी छाई हुई थी; और कैलाश भी कुछ चुपचाप-सा था । जब उसने हम लोगों को सारा क़िस्सा सुनाया, कि किस-किस तरह तुम्हारी भाभी ने ग़ुस्सा किया और किस तरह वह रूठ कर मायके चली गईं, तो माथुर से आखिर चुप न रहा गया और उसने हँस-हँस कर सारा क़िस्सा सुना दिया । अब कैलाश हमारे सर है, कि

घर का डर

हम ही ने यह आग लगाई है, तो हम ही बुझावें; और हम इस पर कुछ-कुछ तैयार हो चले हैं, इसलिए कि कैलाश की तरफ से भी तो डर है, कि वह कहीं हमारे घर पहुँच कर ज़हर न उगल दे, कि हमारी भी यही फज़ीहत हो !!

पैट्रोल

बताया है। मियाँ से हज़ार बार कहा कि कहीं उसकी फ़िक्र करो, आये गये तक नाम धरते हैं। उसकी हमजोलियों की गोदें तक भर चुकीं, रीहाना तो उससे एक साल छोटी है, एक लड़का हो चुका है, दूसरा बच्चा आज ही कल में होने वाला है। और वास्तव में बेगम साहिबा का ख़्याल ठीक था, नज्मा की सहेलियों मे से दो तो शादी करने के बाद बेवा तक हो चुकी थी। एक की शादी हुई, साल भर बाद बच्चा हुआ और बेचारा चल भी बसा, एक के मियाँ से आजकल तलाक़ का मुक़दमा चल रहा है। एक आध ऐसी हैं कि आम क़िस्म की घरेलू ज़िन्दगी गुज़ार रही हैं। मगर नज्मा का अभी कहीं ठीक ठौर ही नहीं। आख़िर एक दिन उन्होंने निश्चय कर लिया कि आज जज साहिब से कुछ न कुछ फ़ैसला करा के रहेंगी, विस्तृत बातचीत करने के विचार से पान्दान के ढकने में काफ़ी डली और सरौता लेकर जज साहिब के कमरे में पहुँचीं, जो पैट्रोल न मिलने के कारण ग़मग़लत करने के लिये अखबार पढ़ रहे थे। बेग़म साहिबा को इस तरह डली सरौते से मुसल्लह (हथियारबन्द) देखकर उन्होंने भी आत्मरक्षा के लिये हुक़्के की नली को मुँह में लगा लिया। मगर तौबा कीजिये बेगम साहिबा भला इन धमकियों में कब आने वाली थी। एक बार बैठ ही तो गई, जान पर खेल कर और खट-खट डली और सरौते का प्रयोग करते हुये बोलीं—
"मैं पूछती हूँ कि आखिर नज्मा को कब तक बिठाये रक्खोगे,

माशा अल्ला सोलहवाँ खतम हो के खाली के चाँद से सतरहवाँ बरस शुरू हुआ है, और तुम हो कि अब तक उसको दूध पीती बच्ची ही समझ रहे हो।"

जज साहिब ने पहले तो चश्मे की आड़ से बीबी को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा, फिर कुछ सोचा, सम्भवतः यह सोचा होगा कि इस किस्म की औरतें पैट्रोल न मिलने को हालत में देश और जाति के लिए किस हद तक अच्छी या बुरी हो सकती हैं। लेकिन वह अभी किसी नतीजे पर पहुँचने भी न पाये थे कि बेगम साहिबा ने फिर उनको चौंका दिया।

"फिर तुमने चुप्पी साध ली, मैं कहती हूँ कि आखिर कब तक टालते रहोगे, तुमने तो सचमुच जिन्दगी अजाब कर रक्खी है। आखिर मैं किस-किस से कहूँ कि लड़की के बाबा से पूछो जिनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती और जो बेटी को अभी तक नासमझ समझते हैं।"

जज साहिब ने भी जवाबी हमले के लिए गला साफ किया और फर्माया—"तुम तो यह समझती हो कि गोया मैं आदमी थोड़ी हूँ, एक तो वह हूँ, गोया मुझको न किसी बात को फिक्र है न कुछ, लड़की शादी के काबिल हो चुकी यह खबर भी बस तुमही को है। शादी की फिक्र भी है तो बस तुम ही को, मैं लड़की का बाप हूँ न मुझमें गोया वह क्या कहते हैं उसे सोचने-समझने की अक्ल है। हर वक्त इनही तमाम फिक्रों में रहता हूँ। यह हाल होकर रह गया है मेरा कि सुबह जो नाश्ता

किया था वह ज्यूँ का त्यूँ रक्खा हुआ है। अब बताओ खाना किस वक्त खाऊँगा ?"

बेगम साहिबा लाख कुछ सही, मगर फिर भी बीबी थी। पच्चीस बरस से जज साहिब की बीबी थीं। इतने दिनों के पाले हुये जानवर तक से हित हो जाता है, वह तो फिर भी मियाँ थे। मजाजी (लौकिक) ख़ुदा, आखिर धीमी पड़ गयी और समझा कर कहा—"तो फिर आखिर नसीम आपा के लड़के मे क्या खराबी है, पढ़ा लिखा सूरत-शक्ल मे भी अच्छा, किसी बुरी बात मे नही, वह जो औरत का क़िस्सा था अब तो सुना है वह भी छूट गई। फिर यह कि जवानी में कौन ऐसी बातें नहीं करता, तुम अपनी ही कहो—वह कौन थी तुम्हारी —क्या नाम था उसका, देखो—ऐ कुछ भला-सा नाम था नगोड़ी का।"

जज साहिब ने जल्दी से कहा—"खैर-खैर मतलब यह कि लड़कों की तो कोई कमी नहीं। तुम्हारी नसीम आपा का लड़का एक, जमाल दो, सराज तीन, और खुदा तुम्हारा भला करे अयूब चार, और—और।"

बेगम साहिबा ने उलझ कर कहा—'तौबा है अब तुमसे फेहरिस्त (सूची) कौन पूछ रहा है, मै तो यह कहती हूँ कि कहीं बात ठीक तो करो।"

जज साहिब ने कहा—"भई किस बिर्ते पर बात ठीक करूँ हाल तो यह है कि पैट्रोल तक नहीं मिलता।"

बेगम साहिबा ने आश्चर्य से आँखे निकाल कर कहा—"पैट्रोल नहीं मिलता ?"

जज साहिब ने विश्वास दिलाते हुए कहा—"मिलता होता तो फिर क्या था, हाल तो यह है कि किसी कीमत पर भी नियमित मात्रा से अधिक पैट्रोल नहीं मिलता।"

बेगम ने वैसे ही आश्चर्य चकित रह कर कहा—"नहीं मैं तो यह कह रही हूँ कि तो पैट्रोल खैर नहीं मिलता वह तो मैं भी जानती हूँ, मगर यहाँ तो नज्मा की शादी की बात चल रही थी, यह पैट्रोल मुये का दुखड़ा क्यों लेकर बैठ गये ?"

जज साहिब ने अपनी बीवी को निहायत नासमझ औरत समझते हुए कहा—"यानी कमाल करती हो, बल्कि गोया जो बातं कहती हो दुनिया से निराली कहती हो. यह पैट्रोल का दुखड़ा हुआ—अरे साहिब हाल तो यह है कि पाँच दिन से सख्त नजला है, मगर पैट्रोल के न होने से मजबूर हूँ। मैरिन् साहिब की लड़की का कल सुबह देहान्त हुआ, मगर मैं पैट्रोल के न होने से हाथ मल कर रह गया। ज़रा मेरा हुलिया तो देखो, मालूम होता है अफरीका के किसी जंगल से पकड़ कर लाया गया हूँ, जिन्दगी भर तुमने इतने बाल बढ़े हुये और सर पर यह जंगल न देखा होगा. मगर मजबूर हूँ क्या करूँ पैट्रोल ही नहीं मिलता। सुबह का नाश्ता यूँ ही रक्खा है गोया सीने पर, खाने का वक्त आ

गया और भूख गायब है, मगर मैं कर ही क्या सकता हूँ जब पैट्रोल न मिले।"

बेगम साहिबा ने चकित होकर अपने पतिदेव को देखना शुरू किया, और बात भी चकित होने की ही थी, इसलिए कि इन्सान जवानी से बढ़ कर बुढ़ापे में सुहाग प्रिय हो जाया करता है। आखिर उन्होंने रुकने-रुकते बहुत ही संभल कर पूछा--"नजला, मैरिन् साहिब की लड़की का देहान्त, सर के बढ़े हुये बाल, आखिर तुम कह क्या रहे हो ?"

जज साहिब को सम्भवतः अपनी बड़ी बी के भोलेपन पर पैट्रोल न मिलने पर भी दया आने लगी, वह जवानी में भी ऐसी ही अल्हड़ थीं, और इसी निरीहता के कारण जज साहिब ने तीन रिश्तेदार लड़कियों में से अपने लिए इनका इन्तखाब किया था। और वह इस सिलसिले में सिर्फ बेगम साहिबा ही को नूरजहाँ नहीं समझते थे, बल्कि अपने को भी जहाँगीर समझा करते थे। उस समय जज साहिब की आँखों के सामने बेगम का वही अहदे-शबाब (यौवन काल) आ गया और उनको बेगम के झुर्रियांदार चेहरे पर शैशव का भोलापन नजर आने लगा। चुनाञ्चे मुस्करा कर बोले—"इस कद्र भोली हो तुम अब तक कि मैं क्या कहूँ, अरे भई मेरा मतलब यह है कि पैट्रोल के न होने से मै तो गोया अपाहिज (अंगभंग) होकर रह गया हूँ। पैट्रोल होता तो डॉक्टर के पास जाकर नजले की दवा लाता, पैट्रोल होता तो क्या

बात थी मैरिन् साहिब के जिन्दगी भर के ताल्लुकात (सम्बन्ध) थे, इस मुसीबत में जाकर उनसे हमदर्दी करता, अंतिम संस्कार में शामिल होता और पैट्रोल ही के न होने की वजह से हेयर कटिङ्ग सेलून तक नहीं जा सकता कि बाल ही बनवा लूँ। मतलब यह कि······"

बेगम ने इस सारी चर्चा को व्यर्थ जान कर कहा--"तौबा है, अब यह लंगेड़ मुई खतम भी होगी, पैट्रोल मुआ मिले न मिले मगर क्या तुम यह चाहते हो कि पैट्रोल न मिले तो लड़की को बिठाये रक्खा जाये ?"

जज साहिब ने क़तई तौर पर कहा—"बहरहाल जो कुछ भी खुदा को मंजूर है वह होगा मगर यह तो होने से रहा कि बग़ैर पैट्रोल के मैं उठा कर लड़की की शादी कर दूँ।"

बेगम ने जल कर कहा—"ख़ुदा के लिए मुझ कम्बख्त को समझा तो दो कि कौन-सी शरई (धार्मिक) मुमानियत है कि पैट्रोल मुआ न मिले तो औलाद की शादी न करो।"

जज साहिब ने हैरत से कहा—"भई यह कैसी बातें कर रही हो, क्या तुम यह चाहती हो कि मेरी लड़की की शादी इक्कों, ताँगों, और बैलगाड़ियों पर हो जाये। बगैर पैट्रोल के आखिर बरात मेरे दर्वाज़े तक क्यों कर आयेगी बगैर पैट्रोल के, दुल्हिन विदा क्यों कर की जायेगी, बगैर मोटर के शादी के इन्तज़ामात किस तरह होंगे, बोलो। अरे भई बताओ न मुझे कि जब पैट्रोल ही न मिले तो आखिर मैं क्या करूँ ?"

बेगम ने क़ायल (तर्कसिद्ध) करने के लिए तारीख़ी (ऐतिहासिक) हवाला ढूँढ़ कर कहा—"जब यह मुआ पैट्रोल न था और यह नगोड़ी मोटर न चलती थी तो क्या शादियाँ नहीं होती थीं ?"

जज साहिब ने तारीख़ (इतिहास) में एम० ए० किया था, और उनका एम० ए० होना बजाये ख़ुद एक तारीख़ी वाक़ा (ऐतिहासिक घटना) था लिहाज़ा वह तारीख़ के मामले में किसी से दब कर नहीं रह सकते थे। तुर्की-ब-तुर्की जवाब देने के लिए आगे खिसके, और थोड़ा-सा अकड़ कर बोले—"जब मोटर न थी शादियाँ तो उस वक़्त ज़रूर होती थीं मगर उससे भी पहले यह होता था कि शादियाँ बिल्कुल ही न होती थीं, अलबत्ता इन्सान पैदा होते रहते थे।"

बेगम ने माथे पर हाथ मार कर कहा—"आग लगे तुम्हारी बातों को, यह लड़की की शादी के सिलसिले में बाबाजान बातें कर रहे हैं। तुमसे तो जो बातें करे वह भी गुनाहगार बन कर रह जाये।"

बेगम ने डली ढकना उठाया, सरौता संभाला और ख़फ़ा होकर चली गयीं। जज साहिब ने एक ठंडी साँस लेकर गोया ख़ुद अपने से कहा—"अगर पैट्रोल मिल सकता तो यह क्यों ख़फ़ा होतीं, मगर क्या करूँ पैट्रोल कम्बख़्त मिलता ही नहीं!"

झूठ-सच

रात को ब्रिज खेलते-खेलते बारह बज गए। घर जो पहुँचे, तो दरवाज़ा बन्द! कल भी एक बजे आए थे, और बेगम से आखिरी वादा किया था कि अब कल से देर न करेंगे, मगर ब्रिज कमबख्त के पीछे सभी कुछ भूल गए, और आज फिर वही व.क्त था, और उसी आफत का सामना! हमने तय कर लिया, कि आज दरवाज़ा तो न खुलवाएँगे, चाहे कुछ भी हो जाय! दरवाजे के अन्दर हाथ डाल कर कुण्डी खोलनी चाही; मगर हाथ वहाँ तक न पहुँच सका। दरवाज़ा तोड़ने में भी कोई नुकसान न था, मगर उस वक्त औज़ार कहाँ से लाते? रौशनदान पर पैर रख कर छत पर पहुँचने की कोशिश की, मगर पैर जरा छोटे निकल गए। ईंटो को तले-ऊपर रख कर एक चबूतरा बनाया, और आखिर जिस वक्त हम कोठे पर पहुँचे हैं, तो घण्टाघर ने एक का घण्टा बजा दिया। दबे पाँव, एड़ी उठाए, पञ्जों के बल जीने से उतरे और चोरो की तरह अपने बिस्तर पर पहुँच कर कपड़े पहिने ही पहिने लेट गए, जूता तक न उतारा! अभी लेटे ही थे, कि बेगम ने अपने बिस्तर से मुँह उठा कर कहा—"जूता तो उतार लिया होता...!"

कलेजा धक-से हो गया, जैसे कोई कोठे के ऊपर से गिर पड़े ! ज़बान हकला कर रह गई, और हम बड़ी मुश्किल से सिर्फ यह कह सके कि,.. "उफ़ . अरे...उफ़.. ओह...!"

अब तो बेगम भी उठ कर बैठ गई, कि आखिर किस्सा क्या है ? रौशनी तेज़ जो की, हमने मुँह बना लिया और लगे इसी तरह वावैला करने । आख़िर वह घबड़ा कर करीब आ गई, और हमको ग़ौर से देख कर बोलीं—"आख़िर, तबियत कैसी है ? तकलीफ क्या है ?"

हमने बहुत कमज़ोर आवाज़ में जवाब दिया—"बुख़ार .. अरे, सर मे दर्द.. बुख़ार !"

बेगम ने माथे पर हाथ जो रक्खा, तो हमको अपनी गलती का अन्दाज़ा हुआ. कि बहाना बहुत ग़लत और बेवकूफी का किया है। हमारे माथे से ज्यादा ख़ुद उनके हाथ गरम थे। माथे के बाद उन्होंने हाथ देखे, और फिर गर्दन, गुद्दी वग़ैरह, मगर किसी जगह भी बुख़ार न पाकर वह बोलीं—"न कहीं बुख़ार है, और बुख़ार था भी, तो एक-एक बजे रात तक उसका इलाज कहाँ करा रहे थे ?"

हमने कहा—"अभी उतरा है बुख़ार । हामिद के यहाँ पड़ रहा था । वह बेचारा सर दबाता रहा, दवा लाकर पिलाई ।"

बेगम ने एक दम से चौंक कर कहा—"क्या कहा, हामिद के यहाँ थे ? वह बेचारे तो ख़ुद यहाँ तुम्हारा इन्तज़ार करते-

करते अभी कोई बारह बजे के क़रीब गए हैं। कोई ज़रूरी काम था उनको।"

हम बुरी तरह पकड़े जा चुके थे! मगर फिर भी वाह रे दिमाग़, और वाह रे हवास, झुँझला कर बोले—"हामिद कौन कमबख़्त कह रहा है! हमीद...हमीद के यहाँ था! ज़रा-सा पानी पिला दो।"

बेगम ने पानी पिलाने की ज़रूरत न समझते हुए कहा—"देखिए, मैंने आपसे पचास मर्तबा कहा है, कि आपका जो जी चाहे कीजिए, मगर झूठ न बोला कीजिए! सौ बुराइयों की एक बुराई यह कमबख़्त झूठ है। अभी आपने हामिद कहा, और जब हामिद का यहाँ आना खुल गया, तो जल्दी से हमीद का नाम ले दिया। हालाँकि, हमीद ही को लेकर हामिद आए थे, और दोनो साथ-साथ यहाँ से गए हैं! आख़िर आप यह क्यों नहीं कहते कि रशीद के यहाँ ताश खेल रहे थे।"

अब हमने बेगम को चुप करने की दूसरी तरकीब सोची, और एक दम से हँस कर बोले—'भई, सच कहता हूँ कि तुम हो बड़ी शरीर; कोई बहाना चलने ही नहीं देती! अच्छा, अब आज से मैं तुमसे सच ही बोलूँगा।"

बेगम ने कहा—"अरे, अगर आप सच बोलने लगे, तो मुझे फिर कोई शिकायत नहीं रह सकती। आप मेरे डर की वजह से झूठ बोलते हैं, मगर ख़ुदा के डर की वजह से सच नहीं बोलते!"

उस व.क्त तो हाँ-हूँ करके हमने बात टाल दी और सो रहे। मगर, सवेरे उठ कर अब जो हमने ग़ौर किया, कि क्या सच-मुच हमको सच बोलना पड़ेगा, और हम सच बोल कर इस दुनिया में ज़िन्दा भी रह सकेंगे, तो हमको यह अन्दाज़ा हुआ, कि अब तक तो बेगम हमको सिर्फ़ झूठा ही समझती हैं, लेकिन अगर हमने सच बोल कर अपने सारे करतूत उन पर खोल दिए, तो वह अपने पतिदेव को दुनिया का सब से बड़ा शैतान समझने पर मजबूर होंगी, और फिर खुद अपने से बढ़ कर अभागिन सारे संसार में शायद ही उनको कोई दिखाई दे। मगर फिर यह भी ख्याल आया, कि सच बोलने में जितनी बड़ी तकलीफ है, उतनी ही बड़ी उसमें अच्छाई भी है, और क्या ताज्जुब कि थोड़े ही दिनों में इसी सच की वजह से हमारे सारे पाप धुल जाएँ! हम यह बातें सोच ही रहे थे, कि बेगम केसरी रङ्ग की नई साड़ी में अपनी सुन्दरता का जादू जगाने के लिए आ पहुँचीं। पहिले तो उन्होंने कभी साड़ी का पल्ला इधर से ठीक किया और कभी उधर से कि शायद हम खुद इस साड़ी और उनकी छवि की तारीफ करें मगर जब हम झूठ न बोले, तो उन्होंने कहा—"कैसी है यह साड़ी ?"

हमने बिलकुल सच बोलने का इरादा करते हुए कहा—"साड़ी तो खैर बुरी नहीं है, मगर अच्छी नहीं लगती आप पर! जिसका रङ्ग गोरा हो, उस पर ही साड़ी का यह रङ्ग अच्छा लगता है।"

बेगम ने ज़िन्दगी-भर ऐसी साफ बात कभी नही सुनी थी। ग़ौर से हमारी तरफ देख कर बोलीं—"क्या मतलब है आपका ? आप तो कहा करते हैं, कि तुम्हारे ऊपर हर कपड़ा खिल जाता है !"

हमने कहा—"देखिए, इसमे बुरा मानने की कोई बात नही। मै कल रात से यह बिलकुल तय कर चुका हूँ, कि अब कभी झूठ न बोलूँगा।"

बेगम ने आँखों मे आँखे डाल कर कहा—"तो आपसे झूठ बोलने को कौन कह रहा है ? मै तो खुद चाहती हूँ कि आप सच बोला करे !"

हमने कहा—"बस, तो मै सच बोल रहा हूँ, कि साड़ी अच्छी है, मगर इस साड़ी के क़ाबिल आपकी सूरत नही है ! अगर यही साड़ी आपकी सहेली, हमीदा, पहन ले, तो क़यामत बन जाय, वह फूट निकले और उसका रूप जगमगाने लगे।

बेगम ने ताज्जुब से कहा—"हमीदा ! मगर आप तो हमेशा ही कहा करते थे कि हमीदा बहुत बदशक्ल है, भद्दी है, फीका शलजम मालूम होती है !"

हमने कहा—"हाँ, आप ठीक कह रही हैं, और मुझे अफ़सोस है, कि मैने हमेशा आपसे यह झूठ कहा है। हमीदा का-सा रूप मेरी नज़रो से आज तक नही गुजरा। जब मैं उसे देख लेता हूँ, तो खुद अपनी सुध नहीं रहती। वह जादूगरनी

है। वह ऐसी सुन्दर मूर्ति है कि उसे हृदय-मन्दिर में रख कर पूजने को दिल चाहता है !!"

बेगम ने मरी हुई आवाज़ में कहा—"तो फिर आप उन देवी जी की पूजा करते हुए क्यों डरते हैं? आपको किसने रोका है ?"

हमने कहा—"देखिए, आप फिर बुरा मानने लगीं ! सच बोलने पर आपको खुश होना चाहिए था, और सच भी यह है कि एक पत्नी के लिए इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है, कि उसका पति उससे झूठ न बोले, उसे धोखा न दे, उससे कोई भेद छिपाए नहीं ! मगर ख़ुश होने की जगह आप बुरा मान रही हैं।"

बेगम ने आँसू भर कर कहा—"मैं बुरा नहीं मान रही हूँ। मगर क्या मेरे प्रेम और मेरी सेवा का यही बदला था, जो आपने दिया है, कि सदा मुझको धोखा दिया ? मुझसे प्रेम करने का झूठ बोल-बोल कर मुझको अपने भाग पर घमण्डी बनाते रहे ! दिल में मुझसे नफ़रत करते थे, और ज़बान से प्रेम से शब्द सुनाते थे।"

हमने कहा—"मुझे अफसोस है कि मैंने ऐसा किया था ! मगर अब उन बातों को जाने दो। अब तो मैं तुमसे वादा करता हूँ कि कभी झूठ न बोलूँगा, और हर बात साफ़-साफ बता दिया करूँगा।"

बेगम ने कोई जवाब न दिया। बस उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी बरसने लगी। हम थोड़ी देर तक तो यह तमाशा देखते रहे। आखिर हमने उनसे कहा—"अगर मेरा सच बोलना ऐसा ही बुरा लगा है, तो जाने दो, मैं तोबा करता हूँ, कान पकड़ता हूँ, कि आज से झूठा भी सच न बोलूँगा। तुम बड़ी सुन्दर हो! तुम्हारा रूप अनूप है, तुम कामिनी-सी हो, तुम मेरे हृदय-मन्दिर की देवी हो! तुम......!!"

बेगम ने गुस्से से काँप कर कहा—"बस, बस रहने दीजिए! मैं बेवकूफ बन चुकी और आप बना चुके! आज तक मुझे अपनी असलियत नहीं मालूम थी, आज सब खुल गया, कि मेरी असली जगह क्या है। आप हमीदा को अपने मन में रचाएँ, उन देवी के पुजारी बनें, और मुझ अभागिनी को मेरे हाल पर रहने दें।"

यह कह कर बेगम ने हुचकियों से कुछ इस तरह रोना शुरू कर दिया, कि हमने सच्चे दिल से कभी सच न बोलने की मन ही मन कसम खाई, और अब बेगम को यह यक़ीन दिलाने को कोशिश कर रहे हैं कि सब कुछ मज़ाक था और सिर्फ तुमको आज़माने के लिए यह ड्रामा खेला था!

उम्दतुल हुक्मा
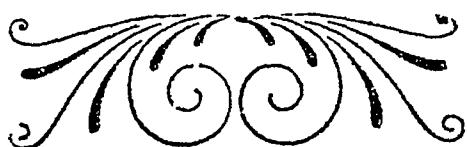
करीम को आप नहीं जानते, न जान सकते हैं। हमसे पूछिए बल्कि हमारे दिल से पूछिए कि यह 'हजरत' है क्या चीज ? दुनिया मे बहुत से समझदार देखे है। एक से एक चलते हुए 'चक्रातून' से पाला पड़ा है लेकिन यह शख्स तो बला है बला ! अङ्गरेजी का एक शब्द नहीं पढ़ा, अङ्गरेजी अखबार दे दीजिये तो उल्टा-सीधा न समझ सकें, परन्तु दो साल तक क्लब का मेम्बर रहा। आला दर्जे का सूट पहन कर आता था और ब्रिज खेलते हुए 'नो विड्' और 'टू नो ट्रम्प्स' कहने के इलावा कमाल यह था कि लोग इससे घण्टो अङ्गरेजी में बाते करते थे और वह 'यस' और 'नो' ऐसे समय पर कहता था कि कभी जो गलती करे। मुद्दतो लोग उसको ग्रेजुएट समझा करते थे। और जब लोगों को मालूम होता था कि हजरत अङ्गरेजी के आस-पास भी नहीं फटके तो यकीन मुश्किल से आता था। फारसी भी वाजबी ही सी जानते थे। मगर शायरो की महफिल मे इस ठाठ से दाद देते थे गोया सनद अता (प्रदान) कर रहे है। पढ़े लिखो में बैठ कर अदबी मुबाहिस (साहित्यिक गोष्ठी) पर ऐसी रायजनी फर्माते थे गोया अगर

आप राय न देते तो यह गोष्ठी अधूरी ही रह जाती। पेशा, जाहिर में तो कुछ समझ नहीं आता था लेकिन कार्य-व्यस्त ही दिखाई देते थे। और यह भी देखा जाता था कि अच्छे से अच्छा खाते और अच्छे से अच्छा पहनते हैं, आला से आला सुसाइटी में पहुँच थी, हर दफ्तर में एक-आध दोस्त पाल रक्खा था, और हर मुहकमे में आपके परिचित मौजूद थे। खैर यहाँ तक तो बात सन्तोषजनक थी परन्तु एकाएक आप गायब हो गये। किसी ने कहा कि—"साहिब हम पहले ही कहते थे कि वह इन्सान नही है, आफत है।" किसी ने कहा—"कर्ज हो गया था अपनी शान के पीछे! आत्महत्या कर ली होगी।" आम राय यह थी कि लड़ाई पर चला गया और अनीस का विचार यह था कि सजा हो गई।

दो साल के बाद लाहौर मे एक दिन अनीस निहायत बद-हवासी के साथ हँसता हुआ घर वापस आया। अनीस मुझसे मिलने लाहौर आया हुआ था, लेकिन मैने अपने ही मुहकमे में अनीस के लिए भी एक जगह निकलवा कर उसको भी अपने ही साथ रख लिया था। ख़ैर यह तो एक असम्बन्धित-सी बात थी। इस समय तो मै अनीस की हँसी से परेशान था कि आख़िर यह हँसी का फव्वारा कैसे फूट पड़ा, यह हँसी किसी तरह दम ही नहीं लेने देती आख़िर। मैंने डाँट कर कहा—"आख़िर बात तो बताओ या खाह-मखाह की बद-मज़ाकी कर रहे हो।"

अनीस ने हँसते हुए कहा—"उम्दतुल हुक्मा" और फिर वही पेट पकड़ कर क़हक़हे।

मुश्किल से आध घण्टे के बाद मालूम हुआ कि करीम ज़िन्दा हैं, जेल में नहीं बल्कि लाहौर में हैं, उच्चकोटि के चिकित्सक बने हुए हैं और औषधालय चला रक्खा है, और चल भी ख़ूब रहा है, अच्छी ख़ासी आमदनी है।

मैंने कहा—"मगर सवाल तो यह है कि यह हकीम बना कैसे ?"

अनीस ने कहा—"कहता है कि बाक़ायदा तिब्ब (यूनानी चिकित्सा शास्त्र) पढ़ी है, सनद लाया हूँ।"

मैंने कहा—"मगर भाई तिब्ब पढ़ने के लिए भी तो आख़िर कुछ न कुछ पढ़ना पड़ता है, उसका आख़िर क्या इन्तज़ाम हुआ होगा ?"

अनीस ने कहा—"अब यह तुम ख़ुद उससे पूछना, अरे साहिब वह तो बड़े रोब-दाब से औषधालय चला रहा है। आला दर्जे की बैठक में निहायत शानदार फ़र्श पर मसनद और गाव लगा कर पेचवाँ लिए बैठा था। शागिर्द (शिष्य) नुस्ख़े लिख रहे थे और बीमारों की वह भीड़ थी कि मैं क्या कहूँ, मुझसे निहायत लिए-दिए मिले और आज रात मुझे और तुमको खाने पर बुलाया है।"

शाम को अनीस ने एक शानदार मकान के क़रीब ले जाकर कहा—"पढ़िये साइनबोर्ड, मुतब्ब उम्दतुल हुक्मा हकीम

मौलवी अब्दुल करीम साहिब नबीराये (पौत्र) हकीम-उल-हुक्मा अल-हाज हकीम मौलवी अब्दुल ग़फ़ूर साहिब मर्हूम तबीब शाही दरबार महाराजा साहिब बहादुर कचर्च।" इस अज़ीमुश्शान (विशाल) सायनबोर्ड को पढ़ कर बहुत से स्वस्थ भी अस्वस्थ हो चुके होंगे, मगर हमको करीम ने यानी 'उम्द-तुल-हुक्मा' बल्कि 'नबीरा हकीम-उल-हुक्मा' ने बीमार होने का मौका भी न दिया और ऐन उसी वक्त जब कि हम सायनबोर्ड पढ़ने में मसरूफ (व्यस्त) थे, हकीम साहिब को मरग़ूब (रुचिकर) कर देने वाली लैण्डो फाटक पर आकर रुकी। हकीम साहिब सम्भवतः मरीज़ों (रोगियों) को देखने तशरीफ ले गये थे। हम लोगों को देख कर निहायत ख़ुलूस (सरलता) से मिले और फर्माया—"भई यह क्या? आख़िर तुम कब से लाहौर में हो?"

हम लोग बातें करते हुए हकीम साहिब के ऐवान तक पहुँच गये, इस अर्से में इनको लाहोर आने की वजह, समय और इसी प्रकार की हदूद अरबानुमा (घनफल-यौगिक) बातें बताईं। हकीम साहिब ने हमको बिठाते और ख़ुद बैठते हुए कहा—"शादी भी की है तुमने मसख़रे आदमी या अब तक वाहद-हाज़र (एकाकी) हो?"

इल्हाम (ईश्वरीय प्रेरणा) इसको कहते हैं कि फौरन एक बात सूझ गई, अर्ज़ किया—"जी हाँ शादी क्या को

है, एक मुसीबत मोल ले ली है। जब से नेक-बख़्त (भाग्यवान्) आई है, एक दिन तो स्वस्थ रही नहीं।"

अनीस ने घूर कर हमको देखा मगर हमारे इशारे पर वह ख़ामोश रहा, हकीम साहिब ने तवज्जह (ध्यान) से पूछा-"अलालत (बीमारी) क्या है ?"

हमने कहा—"क्या कहूँ करीम भाई दुनिया भर के इलाज कर डाले मगर मर्ज़ (रोग) कुछ समझ ही में नहीं आता अब तो घर ही का हकीम है, तुम ख़ुद देख लेना।"

आमादगी (तत्परता) से फ़र्माया—"जब कहो आ जाऊँ या जब चाहो ले आओ।"

हमने वादा कर लिया कि—"कल ही लाएँगे, आख़िर इलाज में बिना कारण देर क्यों हो।"

हकीम साहिब के यहाँ से पुर तकल्लुफ़ (शिष्टाचारपूर्ण) मुकव्वियात (पौष्टिक पदार्थ) खा पी करके जिस समय हम दोनों लौटे, अनीस ने हकीम साहिब से विदा होते ही बेसब्री के साथ पूछा—"आख़िर यह हरकत क्या थी, यानी ख़ाह-मख़ाह एक बीवी भी घड़ ली गई और फिर उसकी बीमारी भी।"

हमने कहा—"आगे-आगे देखिये होता है क्या !"

अनीस ने कहा—"यानी।"

हमने कहा—"यह कि बहुत बनने लगा है यह, और क़सम ले लो मुझसे जो तिब्ब की दुम का भी इसको पता हो।

कल लाऊँगा मैं अपनी बीबी को और मुस्तक़िल (स्थायी) तौर पर होगा इन हज़रत का इलाज, कुछ दिन यही तमाशा सही।"

अनीस ने हैरान होकर पूछा--"यह ठीक है, मगर बीबी का इन्तज़ाम कहाँ से करोगे ?"

हमने कहा—"अरे भाई बड़े अमहक़ हो, यानी तुम जो मौजूद हो।"

चलते-चलते ठहर कर बोला—"क्या मतलब।"

हमने कहा—"मतलब यह कि कल तुमको पर्देदार ताँगे पर लाऊँगा, पर्दे के अन्दर हाथ डाल कर वह तुम्हारी नब्ज़ देखेंगे, हाल सुनेंगे, नुस्खा लिखेंगे फिर मुस्तक़िल तौर पर इलाज होता रहेगा, कभी तुम मुझको ले आना, कभी मैं तुमको ले आया करूँगा। जब तुम लाओगे मुझे, तो कह देना मेरे लिए कि काम पर गया हुआ है, और तुम गोया अपनी भाभी को ले आये हो, वरना मैं खुद तुमको ले आया करूँगा।"

अनीस ने उछल कर कहा—"सख्त लफङ्गे हो तुम, मगर तुम्हारी क़सम रहेगा लुत्फ़।"

दूसरे दिन अनीस को पर्देदार ताँगे में ले कर जब हम 'उम्द-तुल-हुक्मा' के यहाँ पहुँचे हैं तो सचमुच अक़्ल के मरीज़ों (रोगियों) की काफ़ी भीड़ थी। जो इस जाहिले मुतलक (वज्र मूर्ख) को तबीबे हाज़क (बुद्धिमान वैद्य) समझ कर मरने के लिए यहाँ उपस्थित थे। हकीम साहिब हमको देखते ही अपने दूसरे मरीज़ों को छोड़ कर और खुद उठ कर ताँगे के

पास आ गये। हमने अर्ज़ किया—"मैं संक्षेप से हाल सुना दूँ पहले।"

डाँट कर बोले—निहायत बद्तमीज़ है आप, ठहरिये—आदाबअर्ज़ है भाभी।"

हमने पर्दे के अन्दर मुँह डाल कर देखा तो अनीस का हँसी के मारे दम निकला जा रहा था, अत. हमने ज़रा बलन्द आवाज़ से कहा—"तुम ख़ुद क्यों नहीं कहती हो, अच्छा! अच्छा ख़ैर—भई वह सलाम कह रही है।"

हकीम साहिब ने फर्माया—"हाँ यह ठीक है, अब बयान कीजिये हाल।"

हमने कहा—"भई इनकी अलालत का सिलसिला एक साल से चल रहा है।"

हकीम साहिब ने बात काट कर कहा—"आप बयान करते रहिये मैं नब्ज़ देखूँगा ज़रा।" यह कह कर हकीम साहिब ने पर्दे मे हाथ डाल दिया और अनीस ने नब्ज़ दिखाने के लिये हाथ दे दिया।" हमने बयान करना शुरू किया—"पहले तो इनको सिर्फ नज़ला था मगर कुछ ही दिनो के बाद इन्साइक्लोपीडिया के दौरे पड़ने लगे।"

हकीम साहिब ने समझते हुये कहा—"अच्छा—अच्छा—फिर?"

हमने कहा—"इन्साइक्लोपीडिया के दौरों ने इनको बहुत कमजोर कर दिया।"

हकीम साहिब ने कहा—"वह तो होता ही है, फिर ?"

हमने कहा—"इन दौरों का इलाज हकीम एम० अमीन साहिब ने किया, दौरे तो जाते रहे मगर विटेमिन् डी को शिकायत हो गई।"

हकीम साहिब ने तशवीश (परेशानी) से कहा—"अरे-रे-रे, हकीम अमीन साहब को चाहिए था, इसकी पहले से ही रोक-थाम करते।"

पर्दे के अन्दर से आवाज़ आई—"खउँ-खउँ खि-खि-खि।"

हमने बरजस्ता (तुरन्त) कहा—"अब आजकल यह हाल है, कि थोड़ी-थोड़ी देर के बाद ट्रान्समिटर हो जाता है।"

हकीम साहिब ने कहा—"वह तो मैं देख रहा हूँ, कुछ तशख्खी कैफ़ियत (चिड़चिड़ापन) भी है, और नब्ज़ की रफ़्तार भी बहुत तेज़ है।"

हमने कहा—"यहाँ लाहौर से डॉक्टर मुम्ताज़ साहिब का इलाज था, उनका ख़याल है कि पुरानी क़िस्म का कॉन्स्टेन्टीनोपल है।"

होशियारी देखिये, कॉन्टेन्टीनोपल (Constantinople) पर (Constipation) (कॉन्स्टीपेशन) का शुबा करके कहा—"कब्ज़ की शिकायत भी है ?"

हमने कहा—"जी हाँ निहायत सख्त और इख्तानक़ुल-रहम (मासिक धर्म में रुकावट) की मरीज़ा रह चुकी हैं फिर यह कि

बचपन में एक बार व्लाडिवॉस्टक (Valadivostok) का शदीद हमला (भारी आक्रमण) हुआ था।"

हकीम साहिब ने ग़ौर से सुनते हुये कहा—"कुछ हालात मुझको दाई से भी पूछने होंगे।"

हमने कहा—"मैंने इनको लेडी डॉक्टर को भी दिखाया था, वह कहती हैं कि यह सब फ़िज़िक्स की ख़राबी है।"

हकीम साहिब ने कहा—"वकती है, उसका तो कहीं पता भी नहीं, इनके लिये नुस्ख़ा लिखता हूँ, ख़ुदा ने चाहा तो एक हफ्ते में देखियेगा कितना फ़रक़ होता है। बड़े-बड़े नामों की जो बीमारियाँ आपको और इनको बता दी गई हैं, उनका कम-अज़कम अब कोई असर नहीं है। अगर इनको मक़व्वी बदन (पौष्टिक) और मवल्लदे ख़ून (ख़ून बढ़ाने वाली) दवाई दी जाये तो आँतों का, जिगर का, और गुर्दों का तबई-वज़ीफ़ा (स्वाभाविक गति) एतिदाल (संयम) पर आ जायेगा, दर असल इनके लिये ताक़त बढ़ाने की भारी ज़रूरत है।"

हमने कहा—"और हकीम साहिब रड्यार्ड किप्लिंग (Rudyard Kipling) ?"

कहने लगे—"नहीं साहिब वह नहीं, बिल्कुल नहीं, आप आइये मैं नुस्ख़ा देता हूँ।"

हकीम साहिब से जिस समय नुस्ख़ा लेकर हम लौटे हैं, अनीस की हालत ग़ैर थी, साँस उखड़ चुकी थी, आँखों से आँसू जारी थे, हाथ-पाँव सूख ही रहे थे। बड़ी मुश्किल से जब

उसकी हालत सुधरी तो उसने ठहर-ठहर कर कहा—"मैं इस मज़ाक में मर जाऊँगा, नामुमकिन है ज़ब्त करना।"

हमने कहा—"अब कल यह करना कि मैं ताँगे में रहूँगा और तुम हकीम साहिब से हाल कहना।"

अनीस ने कानों पर हाथ रखते हुये कहा—"ना बाबा मुझसे ज़ब्त न हो सकेगा, फ़ौरन हँसी आ जायेगी। यह कमबख़्त तो जैसा क्लब का मैम्बर और ब्रिज का खिलाड़ी था वैसा ही हकीम भी है।"

हमने कहा—"मगर देखते हो किसी जगह अपनी ना-अहली (अयोग्यता) को तसलीम नहीं करता।"

अनीस ने कहा—"एक बात है कि इसको कुछ तिब्बी बातें करना आ गई हैं, जैसे मक़व्वी-बदन, मवल्लदे-ख़ून, जिगर और गुर्दों का तबई वज़ीफ़ा, इसने तिब्ब पढ़ी ज़रूर है।"

हमने वसूक़ (दृढ़ता) से कहा—"अहमक़ है आप, मैं लिख कर दे सकता हूँ कि यह तमाम मालूमात दवाखानों के इश्तहारात से हासिल की हैं, आखिर 'नोबिड' और 'टूनो ट्रम्पम' भी तो कहता था।"

अनीस ने कहा—आखिर इस मज़ाक़ का नतीजा क्या होगा?"

हमने कहा—"बड़ा नतीजाखेज़ (फलदायक) मज़ाक है जनाब! कम से कम उसको यह तो मालूम ही हो जायेगा कि हम लोग इतने गधे नहीं जितने सूरत से नज़र आते हैं, उसको

सिर्फ यह बता देना ही काफी है कि और कोई समझे न समझे लेकिन हमको मालूम है कि वह कितने पानी में है।"

दूसरे दिन हम ताँगे में रहे और अनीस ने हकीम साहिब से गोया अपनी भाभी का हाल कह दिया कि दाई ने देख कर क्या बताया है और कल दवा पीने के बाद उनकी क्या हालत रही। हकीम साहिब ने ताँगे के पास आकर हमारी नब्ज़ देखी, अनीस हाल बयान कर रहा था—"दाई का ख़याल है कि रहम में कुछ इन्टरनेशनल कैफियत है।"

हकीम साहिब ने कहा—"यह-यह इसी का ख़याल था, मगर आज नब्ज की हालत बेहतर है।"

अनीस कम्बख़्त ने सारा भाँडा फोड़ दिया। मारे हँसी के कलाबाज़ी खा गया और हकीम साहिब हैरान् कि माजरा क्या है। आख़िर ख़ुद हमको हकीम साहिब की हैरत दूर करने के लिये बाहर आना पड़ा। हकीम साहिब ने और भी भौचक्का होकर पूछा—"यह यानी यह क्या हरकत थी?"

देर तक हँसने के बाद हमने कहा—"सिर्फ तुमको यह बताना था कि तुम कम से कम हमसे न बनो. तुम्हारी इस हकीमी के ढोंग को हम ख़ूब समझते हैं।"

अनीस ने हँसते हुये कहा—"मगर कमाल है करीम कि ऐसा बाकायदा हकीम बना बैठा है।"

हकीम साहिब ने संजीदगी (गंभीरता) से कहा—"यह तो मैं पहले ही कह रहा था कि नब्ज तो है मर्दाना और

बीमारियाँ जितनी बताई हैं वह सब जनाना है, आखिर यह माजरा क्या है।"

अजीस ने हँसते हुये कहा—"इसे क़त्ल कर डालो, बोटी-बोटी काट कर फेंक दो मगर क्या मजाल है कि अपने बहरूप को कभी भी तसलीम कर ले।"

हकीम साहिब ने कहा—"ऐसा खतरनाक मज़ाक करते हो, अच्छा मैं भी समझ लूँगा तुम से।"

समझते तो ख़ैर वह क्या मगर दुनिया को अपना हकीम होना समझा ख़ूब रहे हैं। हकीम साहिब के पूछना यह है कि गधे के लिये ख़ुश्का (भात) मुफ़ीद होता है या मुजिर हानिकारक ?

इन्क़लाब ज़िन्दाबाद

—१—

कोई तन, मन, धन, लुटा कर लीडर बना होगा, कोई जेलों में ज़िन्दगी काट कर, चक्की पीस कर, और रासबाँस कूट कर, इस दरजे पर पहुँचा होगा, मगर हमारे पड़ोसी ग़फ़ूर की लीडरी कुछ और ही तरह शुरू हुई। आप एक निहायत थर्ड क्लास औरत कहीं से भगा लाए थे। हम लोग तो इस क़िस्म के आदमियों को गुण्डा कहते हैं, मगर यह किसको पता था, कि यही गुण्डा किस्मत का ऐसा धनी निकलेगा, कि बड़े-बड़े इसको सर आँखों पर जगह दें और उसके पैर छुएँ! उस औरत का आना था कि एक आफत मच गई, मालूम यह हुआ कि वह किसी कचालू वाले की लड़की थी और अपना नाम 'कलिया' बताती थी। ग़फ़ूर मियाँ ठहरे आदमी चलते हुए, आपने इसको लाते ही पहले तो मुहल्ले की मसजिद मे पहुँचवा दिया मौलवी साहब के पास, ताकि वह मुसलमान हो जाए और फिर वही दस-पाँच आदमी जमा करके कर लिया उससे निकाह! यह ख़बर जो पहुँची कचालू वाले के पास; तो वह भी अपने आदमी लेकर आ मौजूद हुआ और शुरू हो गई दोनों तरफ से गालम-गलौज, फिर धींगामुश्ती और आख़ीर में अच्छा खासा

हंगामा हो गया। भगाई गई थी औरत, मगर नारे लग रहे थे इधर से "अल्ला हो अकबर" के और उधर से "वन्दे मातरम" के। नतीजा यह कि देखने वालों ने गफूर को देखा न 'कलिया' को बल्कि यह नारे जो सुने तो, 'अल्ला हो अकबर' वाले इधर हो गए और "वन्दे मातरम्" वाले उधर, बिजली की तरह यह खबर सारे शहर में मशहूर हो गई कि चमरटुलिया में हिन्दू-मुस्लिम फसाद हो गया, वहाँ तो शायद किसी ने किसी के ढेला ही मारा होगा, मगर शहर भर में मशहूर था, कि दस आदमी मारे जा चुके हैं, हिन्दुओं में शुहरत थी, कि नौ हिन्दू मारे गए और मुसलमानों में यह खबर गरम, कि नौ मुसलमान मारे गए! लीजिए सारे शहर में हिन्दू मुसलमानों के .खून के और मुसलमान हिन्दुओं के .खून के प्यासे हो गए। इधर-उधर हमले होने लगे, किसी ने किसी से दुश्मनी निकालने का अच्छा मौक़ा देखा, किसी ने करज के तकाजों से बचने के लिए महाजन को ही साफ कर देने की ठान ली, किसी को इसी बहाने लूट-मार का मौका मिल गया। नतीजा यह, कि देखते ही देखते सारे शहर में .खून की होली खेली जाने लगी। दूकानें लुट गईं, मकानों में आग लगा दी गई, शरीफ घरों में घुस गए अपनी शराफत लेकर और गुन्डे निकल आए बाहर लूट-मार करने! बड़ी मुश्किल से आधी रात के क़रीब पुलिस ने दो जगह गोली चला कर अमन कायम किया, गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं, आग बुझाई गई, जख्मी अस्पताल पहुँचाए गए और

मुरदे थानों पर लाए गए, दूसरे दिन शहर मे 'करफ्यू ऑर्डर' था, मगर अखबार वालों की आवाजें गूँज रही थीं :

"रोजनामा 'इस्लाम' आ गया, शहर में हिन्दू मुस्लिम हंगामा ! पचास फरजन्दाने-इस्लाम शहीद और दो सौ गाजी !! शेरे-इस्लाम ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर की गिरफ्तारी।"

"ताजा परचा 'देश समाचार' शहर में ख़ून की होली, श्रीमती रामकली मुसलमान गुण्डों के जाल मे !! पचास हिन्दू स्वर्ग-वासी और दो सौ जख्मी हुए।"

लीजिए, जरा सी देर मे मियाँ ग़फ़ूर शेरे-इस्लाम भी बन गए, ग़ाजी भी और अब्दुल ग़फ़ूर भी; और कलिया की शान तो देखिए वह श्रीमती रामकली बन गईं, शहर मे निकल तो सकते ही न थे—दोनों अखबार मँगा कर पढ़ा करते, रोजनामा 'इस्लाम' मे बड़ी मोटी-मोटी सुरखियों से यह खबर यों दी गई थी :

शहर मे हिन्दू-मुस्लिम फसाद, अल्ला हो अकबर का शोर और खून की बारिश, इस्लाम पर इस्लाम-दुश्मनों के हमले—शेरे-इस्लाम ग़ाजी अब्दुल ग़फ़ूर की गिरफ्तारी। हुकूमत की हिन्दू-परस्ती और इस्लाम से दुश्मनी !!

शोरपुर—४ अप्रेल। आज शाम को शोरपुर मे निहायत सख्त हिन्दू-मुस्लिम फसाद हो गया, जिसमें पचास फरज़न्दाने-इस्लाम शहीद हुए और दो सौ के क़रीब इस्लाम के दीवाने जख्मी होकर अस्पताल पहुँचाए गए, मुसलमानों के खून से

शहर के गली-कूचे नहाए हुए नजर आते हैं और बावजूद अमन कायम हो जाने के, अब तक इक्का दुक्का हमले हो रहे हैं। शहर में करफ्यू ऑर्डर है, तमाम दुकानें बन्द हैं और पुलिस की हथियार-बन्द टोलियाँ बराबर गश्त कर रही हैं गिरफ्तारियाँ ज्यादातर मुसलमानों की हुई हैं जिससे मुसलमानों में सख्त बेचैनी फैली हुई है। मशहूर मुस्लिम लीडर शेरे-इस्लाम गाजी अब्दुल गफ़र की गिरफ्तारी ने यह बात यकीनी कर दी है कि मुसलमान खामोशी से अपने रहनुमा की गिरफ्तारी को बरदाश्त न करेंगे और यह हंगामा फिर सर उठाएगा। वाक-आत यह बयान किए जाते हैं, कि शेरे-इस्लाम की एक तकरीर सुन कर मुसम्मात कलिया ने मुसलमान होना चाहा और शेरे-इस्लाम ने आपको हजरत पीर सुहागशाह के हाथ पर मुशर्रफ़ ब इस्लाम किया, इसके बाद इस्लामी मसावात का सुबूत देते हुए शेरे-इस्लाम ने इस बात को भी मञ्जूर कर लिया कि मुसलमान हो जाने के बाद मुसम्मात कलिया का दरजा हम सब के बराबर है, लिहाज़ा मैं खुद उससे अपनी शादी करता हूँ। मुसम्मात कलिया जिनका इस्लामी नाम कनीज फातिमा है, शेरे-इस्लाम के निकाह में आ गईं, इस खबर ने हिन्दुओं को बदहवास कर दिया और वह मुसलमानों पर अचानक टूट पड़े। मुहतरिमा कनीज फातिमा ने अपने शौहर की गिरफ्तारी के वक्त, बयान दिया है कि मुझे ख़ुशी है कि मेरा शौहर इस्लाम के नाम पर जेल जा रहा है, अगर जरूरत पड़ी और इस्लाम

नें पुकारा तो मै भी अपने शौहर के नक्शे क़दम पर चल कर अल्ला हो अकबर का नारा बुलन्द करती हुई जेल में पहुँच जाऊँगी!

'देश समाचार' उठा कर देखा, तो उसमे भी सब से मोटी खबर यही थी, मगर रंग दूसरा था

शोरपुर मे मुसलमान गुण्डो ने आग लगा दी, ख़ून की नदियां बह गईं! हिन्दू स्त्री की लाज पर पचास हिन्दू भेट चढ़ गए!! श्रीमती रामकली मुसलमानो के चंगुल में!!!

शोरपुर—४ अप्रैल। आज शाम को शोरपुर मे आधी रात तक मुसलमान गुण्डों ने हिन्दुओ के ख़ून से जो होली खेली है और हिन्दू दूकानदारो को लूट मार से जो नुकसान पहुँचाया है, उसका ठीक-ठीक अन्दाज़ा अभी नही हो सकता। अब तक पचास हिन्दुओ के मरने और दो सौ के ज़ख्मी होने का पता चला है। माली नुक़सान का कोई अन्दाज़ा नही। शहर मे करफ्यू ऑर्डर है, मगर मुसलमान गुण्डे अब तक लूट-मार कर रहे है। हिन्दू भी उस वक्त तक आनन्द से नही बैठ सकते, जब तक कि श्रीमती रामकली देवी को, मुसलमान गुण्डों के चंगुल से छुड़ाया नही जाता, श्रीमती जी पर ज़ोर डाला जा रहा है कि वह अपना धर्म छोड़ कर मुसलमान हो जाएँ,। मगर वह अब तक अपने धर्म के नाम पर जी रही है और इसी धर्म पर मरने का बीड़ा उठा चुकी है। हुकूमत का सब से पहला काम यही होना चाहिए कि वह श्रीमती जी को मुसलमान

गुण्डों के हाथ से छुड़ा कर हिन्दुओं को शान्त करे और उन मुसलमान गुण्डों को सख्त सज़ाएँ दे, जिनके हाथों हमारी माँ-बहनों की लाज भी खतरे में है।

अख़बारों ने इस लगी हुई आग में कुछ तेल और भी छिड़क दिया, हालाँकि शहर में ऐसे हिन्दू और मुसलमान भी निकल आए थे जो यह जानते थे कि न हिन्दू धरम खतरे में है और न यह लड़ाई कोई इस्लामी जिहाद है।

एक अवारा मर्द और एक बदचलन औरत का किस्सा है, जिसको यह रंग दे दिया गया है; मगर हवा कुछ ऐसी चल गई थी कि इन शरीफों की कोई न सुनता था, दोनों ने मिलकर मेल-जोल की कोशिशें कीं, दोनों को तरह-तरह समझाया-बुझाया गया, मगर गुत्थी सुलझने की जगह उलझती ही गई। आख़िर तय यह पाया, कि अगर शेरे-इस्लाम ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर छोड़ दिए जाएँ तो मुसलमान चुप हो रहेंगे और हिन्दुओं ने कहा कि अगर श्रीमती रामकली देवी उनको वापस दे दी जाएँ तो उनको इत्मीनान हो जायगा। सब से पहिले कोशिश करके मियाँ ग़फ़ूर, बल्कि, नहीं, माफ़ कीजिएगा, शेरे-इस्लाम ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर को छुड़ाया गया, जेल के बाहर हज़ारों मुसलमानों का मजमा था, ग़ाजी अब्दुल ग़फ़ूर को फूलों से लाद दिया गया और मोटर पर बिठाकर लोग जुलूस की शकल में उनको शहर में लाए और एक बड़े मैदान में, हज़ारों आदमियों के मजमे के सामने आप ने तक़रीर की।

"मुसलमान भाइयो ! आप जानते है कि मेरी यह गिर-फ्तारी क्यो हुई थी ? मै अल्लाह के नाम पर जेल गया था, मेरी खता यह थी, कि मैने एक काफिर को मुसलमान किया था, और मुसलमान बनाने के बाद उसको बराबर का दर्जा दिया, मुसलमान सब बराबर है !

वह मुसलमान होकर बे वारिस के क्यों रहती ? मैंने उसको अपनी बीबी बना लिया। हिन्दू इस को मेरी बदमाशी कह रहे हैं, वह कहते है कि मै एक औरत को भगा लाया, मगर आप जानते है, कि अल्लाह वालो पर न जाने क्या-क्या इलजाम लगा करते है।"

यह तकरीर इसी तरह की थी, जैसी ग़फ़र के ऐसा कोई जाहिल कर सकना था, मगर अखबार मे आप की तकरीर से कॉलम के कॉलम भरे हुए थे।

फखरे-मिल्लत, शेरे-इस्लाम—गाज़ी अब्दुल गफूर का नारए-मस्ताना ! इस्लाम आज़ाद है और मुसलमान हर क़ैद से अपने को आज़ाद समझता है !!

शेरपुर—१० अप्रैल। आज सेन्ट्रल जेल से रिहा होते ही शेरे-इस्लाम गाजी अब्दुल ग़फूर का जो शानदार जुलूस निकाला गया है उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। रास्ते में फाटक लगाए गए थे और मुसलमानो की दुकाने सजी हुई थीं, करीब-क़रीब दस हज़ार मुसलमान जुलूस में शरीक थे। इन्सानो का एक मौजें मारता हुआ समुन्दर था जो अपने लीडर को बहाए

ले जाता था। सारे शहर का गश्त करने के बाद यह जुलूस मोती पार्क पहुँचा, जहाँ हज़रत पीर सुहागशाह की सदारत में जल्सा हुआ और शेरे-इस्लाम ग़ाज़ी अब्दुल ग़फूर ने तकरीर करते हुए कहा कि मुसलमान धमकियों से डरना नहीं जानते, वे आज़ाद हैं और आज़ाद रहेंगे। जेल की सलाखें उनकी आज़ादी को रोक नहीं सकतीं तबलीग़ उनका पैदायशी हक़ है और हिन्दुओं की धमकियों से डर कर वह अपने इस हक़ को किसी कीमत पर हाथ से देने के लिए तैयार नहीं हैं। इस्लाम ने कलिया नामी एक औरत को खाक से पाक किया और अब वह कनीज फातिमा बनकर खुद मेरी औरत बन चुकी है। हिन्दू इसकी वापिसी का मतालबा कर रहे हैं; मैं इसके लिए बिलकुल तैयार हूँ, बशर्ते कि वह खुद इसको मन्जूर करे।"

इसी तरह की फर्ज़ी तकरीर से सारा अखबार भरा हुआ था और इस तकरीर में ऐसे मोटे-मोटे लफ्ज़ थे जो बेचारे ग़फूर ने कभी सुने भी न होंगे। उधर 'देश समाचार' में ग़फूर को छोड़ देने पर गुस्सा किया गया था और हिन्दुओं को भड़काया गया था। एक खत भी श्रीमती रामकली देवी का छपा था कि मैं मुसलमान गुण्डों के चंगुल में फंसी हुई हूँ और मुझ पर बहुत सख्तियाँ हो रही हैं कि मैं मुसलमान हो कर ग़फूर से शादी कर लूँ मगर अब तक मैंने अपना धर्म नहीं छोड़ा है। अब अगर हिन्दू कानों में तेल डाल कर चुपके बैठे रहे तो न जाने मेरी क्या दशा होगी? दूसरे ही दिन रोज़नामा 'इस्लाम'

ने इस खत को जाली ठहराया और कनीज़ फातमा का एक बयान छापा कि मैंने कोई खत किसी को इस क़िस्म का नहीं लिखा है। जैसा कि मेरे हिन्दू नाम से 'देश समाचार' में छपा है। मैं अपनी खुशी से मुसलमान हुई और मुझे फख्र है कि मैं शेरे-इस्लाम ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर की बीबी बनकर मुसलमानों में इज्जत की ज़िन्दगी बसर कर रही हूँ। इसके दूसरे दिन 'देश समाचार' ने इस बयान को झूठा ठहराया और कुछ मुअज्जिज़ और पढ़े-लिखे हिन्दू भी इस बीच में पड़ गए और कचालू वाले से कचहरी में दावा करा दिया कि उसकी लड़की ग़फ़ूर के साथ इतना-इतना माल लेकर भाग गई। अदालत ने मुसम्मात कलिया और ग़फ़ूर को बुलवा लिया। मगर कलिया ने अदालत में भी बयान दे दिया कि मैं बालिग़ हूँ और अपनी खुशी से आई हूँ। इसलिए मुकदमा भी न चल सका। मगर अखबारों ने इस मुकदमे को ही राई का पहाड़ बना कर दिखाया। मुसलमान मैजिस्ट्रेट को हिन्दू अखबारों ने बदनाम किया। हिन्दू कोर्ट इन्स्पेक्टर पर मुसलमान अखबारों ने कीचड़ उछाली। डी० एस० पी० पर हिन्दुओं ने इलजाम रक्खे। हिन्दू एस० पी० के पीछे मुसलिम अखबार पड़ गए। नतीजा यह हुआ कि यह मुक़द्दमा भी अगवा का नहीं, बल्कि सयासी मुकदमा बनाकर सब के सामने पेश किया गया।

इस क़िस्से को तो अब पाँच बरस हो चुके। कलिया का पता भी नहीं कि क्या हुई। सुना था कि वह ग़फ़ूर को छोड़कर

कहीं भाग गई, मगर ग़फ़ूर को हमेशा के लिए लीडर बना गई। वह अब तक शेरे-इस्लाम ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर बने हुए हैं। पहले मिस्त्री थे, अब कुछ नहीं करते। तक़रीर करना आ गई है! आदमी चलता हुआ भी है और ज़रा निडर भी। बहुरूप भी ख़ूब बना लेता है, इससे ज़्यादा और क्या चाहिए? उसके मानने वालों की कोई कमी नहीं है। जब चाहे, हड़ताल करा दे। जितना चाहे, चन्दा वसूल करे। जिनको चाहे, वोट दिलवा दे। उसकी आवाज़ पर सभी कान रखते है और उसके इशारों पर सभी चलते हैं। अब तो उसने बड़ी-सी दाढ़ी रख ली है। ऐनक लगाता है। लम्बा-सा कुरता पहनता है। मोटा-सा डंडा उसके हाथ मे रहता है। और लीडरी उसका पेशा बनकर रह गया है!

यह तो खैर एक बहाना था, ग़फूर को शेरे-इस्लाम और ग़ाज़ी बना देने का मगर उसके बाद .ख़ुद ग़फूर ने अपने को लीडर बनाने के लिए जो कुछ किया है उसकी उम्मीद उनके ऐसे जाहिल से ज़रा कम हो सकती है। अब तो शोरपुर की हर छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी बात में टाँग अड़ाने लगे। म्यूनिसपैलिटी का एलेक्शन हो या किसी लीडर की गिरफ्तारी पर हड़ताल, किराया कम करने के लिए दूकानदार जलसा करें या वेतन बढ़ाने के लिए पोस्टमैन जुलूस निकाले, इक्का-टाँगे वाले चलानों के खिलाफ शोर मचायें या मिल में काम करने वाले मज़दूरी बढ़ाने के लिए काम छोड़कर जलसा करने लगें, मतलब यह, कि कुछ हो, गाजी अब्दुल गफूर हर जगह मौजूद हैं और मारे जोश के दिवाने हुए जाते हैं। स्टेज पर गरज रहे हैं; मालूम यह होता है, कि अपने व्याख्यान से सारी दुनिया को उलट-पुलट कर रख देंगे। जुलूस है तो सब के आगे निशान के हाथी की तरह आप ही झूमते चले जा रहे हैं, एले-क्शन है तो जिस उम्मीदवार के साथ आप हो गये, यह समझ लीजिये, कि वह जीत गया।

एक तो वह .खुद चलते हुए, दूसरे उनके मानने वालो ने—सब से बढ़ कर रोज़ाना 'इस्लाम' ने—उनको उछाला। नतीजा यह है कि थोड़े ही दिनों मे वह अच्छे-खासे लीडर बन कर रह गए। पढ़े-लिखे थे बेचारे बस इतना ही कि थियेटर के गानों की किताब पढ़ लिया करे इसलिए अब उनको ज़रूरत इस बात की थी कि उनकी लीडरी को सँभालने के लिए कोई पढ़ा-लिखा आदमी उनकी सहायता करता रहे। हम ठहरे उनके पड़ोसी, इसलिए सबसे पहले उनकी नज़र हम पर ही पड़ी। देखते क्या हैं, कि एक दिन चले आ रहे है सर से पैर तक खद्दर भण्डार और सूरत से मदारी बने हुए। हमने खड़े होकर उनका स्वागत किया तो वह कुछ लज्जित होकर बोले, "अरे भैया यह तुम क्या कर रहे हो, भला मै इस योग्य, कि मेरे लिए तुम खड़े हो।"

हमने कहा, "शेख साहब आप को .खुदा ने हमारा लीडर बनाया है।"

बात काट कर बोले, "ना ना ! ना ! यह तुम न कहो भइया। मै अब भी तुम्हारे लिए वही ग़फ़ूर हूँ। कैसी लीडरी और कैसा कुछ ! यह तो सब वही बात है, मानो तो देवता नही तो पत्थर। मै अपनी असलियत तुम्हारे सामने कभी भी नहीं भूल सकता। और इस बात पर भैया तुमको भी .खुश होना चाहिए कि तुम्हारी रियाया को अल्लाह ने यह इज्ज़त दे रक्खी है।"

हमने कहा, "बेशक .खुश होना चाहिए। और क्या तुम यह समझते हो कि .खुश नही हैं; बल्कि हमको तो आश्चर्य होता है

कि तुम न पढ़े न लिखे मगर तो भी जोश ने तुम को इस दर्जे पर पहुँचा दिया कि आज इज्ज़त से सब तुम्हारा नाम लेते है, तुमको "शेरे-इस्लाम कहते है, 'ग़ाज़ी' जानते है।"

ग़फ़ूर ने दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहा, "यह सब तुम्हारी दुआ है भैय्या मगर आज मै तुम्हारे पास जिस काम से आया हूँ वह तुमको करना ही पड़ेगा, अब मेरी इज्ज़त तुम्हारे हाथ है।"

हमने कहा "ख़ैरियत तो है? मुझसे जो कुछ होगा उसमे कुछ भी कमी नही करूँगा। एक तो मै तुम्हारा पड़ोसी दूसरे अब तुम इतने बड़े आदमी हो गये हो कि तुम्हारा काम करना ख़ुद मेरी इज्ज़त है गोया—"

गफूर ने अब सच बोलने के लिए कुर्सी हमारे तरफ खिसकाई और चुपके-चुपके कहना शुरू किया "अपनी इस लीडरी को मै ख़ुद समझता हूँ। चलती का नाम गाड़ी है भैय्या। जब लोग मुझको लीडर बनाये हुए है तो मेरी गिरह से क्या जाता है, मै भी बना हुआ हूँ लीडर! ख़ुदा भला करे कलिया का जो मुझे लीडर बना गई।"

हमने कहा "लीडर बना गई क्या मतलब, कलिया से तो तुम्हारी शादी हो गई थी न?"

गफूर ने कहा "कैसी शादी और कहाँ का ब्याह? भाग आई थी और अब फिर भाग गई। बस अपनी निशानी यह छोड़ गई कि अब मै लीडर बना हुआ हूँ। हाँ तो मै यह कह

रहा था भैय्या कि अब यह गाड़ी मुझसे नहीं चल सकती यदि तुम अपना शागिर्द बना कर सर पर हाथ न रक्खो।"

हमने कहा "क्या मतलब ?"

ग़फ़ूर ने कहा "मतलब यह कि आज से मै तुम्हारा शागिर्द और तुम मेरे उस्ताद।"

हमने साफ कहने का इरादा करते हुए कहा "भाई सुनो! बुरा न मानना, मैं ठहरा निहायत बेवकूफ आदमी। न मै कॉट-छॉट की बातें जानता हूँ और न यह चार सौ बीस मुझसे हो सकेगा। इस मामले में तो बड़े उस्ताद तुम ख़ुद हो।"

ग़फ़ूर ने कहा "यह तो ठीक है। यह सब बाते तो हो ही जायेंगी। मगर मै अपनी जहालत को क्या कहूँ। क़दम-क़दम पर मुझे डर लगता है कि न जाने क्या जहालत की बात मुझसे हो जाये और सारे किये धरे पर पानी फिर जाये? आप मुझे ज़रा मदद देते रहा करे। अब जैसे मुझ पर एक मुसीबत आ पड़ी है, कि मुझे मज़दूर सभा की सालना कॉन्फरेन्स का प्रेजिडेन्ट बना दिया गया है। बनने को तो बन गया हूँ मै प्रेजिडेन्ट, मगर वो लोग कह रहे है कि एड्रेस मै भी लिख कर उनको दे दूँ जिसे वे पहले से छपवाले। अगर यो ही तकरीर करनी होती तो मै करदेता। आप की दुआ से तक़रीर करने मे मॅज गया हूँ। मगर यह एड्रेस-वेडरेस मेरे बस का रोग नहीं।"

हमने कहा "अच्छा मान लो कि हमने एड्रेस लिख दिया तुमको। मगर जब तुम प्रेज़ीडेन्ट बन कर बैठोगे और वह रेज्यूलेशन

पेश होगी, उन पर बहस होगी, उस वक्त, क्या करोगे और क्यो कर समझ पावोगे ?"

ग़फूर ने कहा "इसमे समझ की क्या बात है ? यह बाते तो सब ऊट-पटांग की हो ही जाती हैं। आदमी जरा अपना रोब कायम रक्खे। फिर तो उसकी बेवकूफी को अकलमंदी समझा जाता है। आप तो जरा ऐड्रेस ऐसा लिख दीजिये जिसकी हर सतर पर तालियाँ बजे । और—जब अखबारो मे छपे तो सारे मुल्क मे धूम हो जाये। इस एड्रेस मे इस किसिम की बाते ज्यादा रखिएगा कि मजदूर अपनी नबाही के ज़िम्मेदार ख़ुद है—वह पेट के लिए इज्जत तक की परवाह नही करते। यह सब इन्ही की कमाई है जो सेठो की तिजोरियाँ भरे हुए हैं। इन्ही के बल-बूते पर यह धनवान चैन की वंशी बजाते है, छोटो ही ने इनको बड़ा बनाया है। मगर वो बड़े बन कर अपने इन हाथ पैर को भूल गये है, जिनकी बदौलत वे आज इस काबिल हुए है कि उनके ऊँचे महलो तक मज़दूरो की फाको से कमजोर आवाजें तक न पहुँच सके। मज़दूरो ने उनके लिए कमाया है मगर इस कमाई मे मजदूरी का हिस्सा बस इतना ही है कि धन मालिक का, फाका मज़दूरो का ! इसी तरह इस ऐड्रेस मे जगह-जगह यह जिक्र आना चाहिए कि अगर आज मजदूर फाका कर बहादुरों की तरह मरने को तैय्यार हो जाये और अपना हक माँगने के लिए उन दरिन्दो का मुकाबला करे जो उनका खून चूस रहे है, तो मै यक़ीन दिलाता हू कि इन मज़दूरों के

आगे-आगे मैं चलूँगा और सबसे पहली गोली अपने सीने पर मैं खाऊँगा।"

ग़फ़ूर अपने ऐड्रेस का मज़मून बता रहा था और हम हैरान थे कि यह बातें उसको कहाँ से आ गईं। जलसों में शिरकत करते-करते अब वह इस क़िस्म के हाथी के दाँत अच्छे खासे बनाने लगा था। वर्ना इसके ऐसे आदमी को भला इन बातों से क्या मतलब? हम उस वक्त, दिल ही दिल में न जाने क्या सोच रहे थे। सब से ज़्यादा हमको अपनी हालत पर रोना आ रहा था कि हम उस क़ौम में से हैं जिसके लीडर यह मियाँ गफ़ूर हमारे सामने बैठे हुए हैं। जिस क़ौम के लीडर ऐसे हों उस क़ौम का बेड़ा भी बेहया। मगर इसमें ग़फ़ूर का क्या कसूर था? अन्धी तो वह क़ौम थी जिसने ऐसा 'हैण्ड-लूम' लीडर बनाया। इस क़िस्म के बनस्पती लीडरों की हमारे यहां कोई कमी नहीं है। जो कुछ और नहीं बन सकता वह अगर पढ़ा-लिखा है तो वकील बन जाता है और अगर जाहिल है तो फकीर या लीडर बन जाता है! खैर यह रोना कहाँ तक रोया जाय और न यह वक्त इन बातों को सोचने का है। इस वक्त, तो मियाँ ग़फ़ूर हमको अपना उस्ताद बनाने पर तुले हुए थे और हम मज़बूर थे, कि इनके हुक्म की तामील करें। नहीं तो वह ठहरे लीडर। हमारे दरवाज़े पर सत्याग्रह शुरू कर सकते थे। हमारे यहाँ का भिस्ती, भंगी, नाई, धोबी बंद करा सकते थे और हमको अपनी एक ही तकरीर से गद्दार ठहरा कर

सारी कौम को हमारा दुश्मन बना सकते थे। इसलिए उनके बताये हुए ऐड्रेस के मज़मून को हमने गिरह मे बाँधा और उनसे वादा कर लिया कि ऐड्रेस को लिख कर देगे।

आखिर हमने ऐड्रेस लिखा और .खुदा का शुक्र है कि मियाँ गफूर को यह ऐड्रेस पसन्द भी आ गया। अब वो हमारे सर थे कि हम भी उनके साथ जमालपुर मजदूर कॉनफरेन्स मे जाएँ। हमने भी सोचा कि चलो, यह तमाशा ही देखेंगे कि मियाँ ग़फूर किस प्रकार सिदारत करते है। सचमुच यह तमाशा ही था कि गफूर का ऐसा रँगा हुआ सियार इतनी बड़ी कॉन.फ्रेन्स का सदर वन रहा था। सच पूछिये तो यह हिम्मत हम नही कर सकते थे। राजनीति की ऊँच-नीच को समझना हर एक के बस मे नही होता। एक क़ौम की रहनुमाई इतना छोटा काम नही है कि हम आप सभी उस जिम्मेदारी को अपने सर ले सके।

मगर गफूर को देखिए कि वह निहायत वेफिक्री के साथ उस जिम्मेदारी को इस तरह अपने सर लिए हुए थे जैसे एक बैल यह समझे वगैर गाड़ी को खीचना शुरू कर देता है कि उस पर वोझ कितना है।

ऐड्रेस छप कर तैयार हो गया। गफूर कील-कॉटे से लैस हो गये। हम उनके साथ जाने को तैयार हो गये और हमारी ही तरह के एक दो मुहल्ले वाले और साथ थे! जो इस इज्जत पर फूले नहीं समाते थे कि उनके मुहल्ले का एक शख्स

इतना बड़ा आदमी है। यह छोटा-सा काफ़िला शोरपुर से जमालपुर की ओर रवाना हुआ। दो ही तीन स्टेशनों की बात थी कि एक घंटा के बाद हमारी ट्रेन जमालपुर पहुँच गई। स्टेशन पर आदमियों का लहरें मारता हुआ समुन्दर कॉनफरेन्स के प्रधान का स्वागत करने के लिए मौजूद था। गाड़ी के ठहरते ही तमाम प्लेटफॉर्म 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' 'ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ज़िन्दाबाद,' 'शेरे-इस्लाम ज़िन्दाबाद', 'मजदूर-मज़दूर एक हो,' के नारों से गूँज उठा। ग़फ़ूर ने खिड़की से झाँक कर बड़े रख-रखाव से इन नारों पर मुस्कराना और मजमा को हाथ जोड़-जोड़ कर सलाम करना शुरू कर दिया। अब सारा मजमा सिमट कर हमारे डिब्बे के सामने जमा हो चुका था! एक पर एक सवार हुआ जाता था। हर एक यह चाहता था कि उसी का हार ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर के गले में पड़ जाय। वालेन्टियर भीड़ को बहुत कुछ रोकने की कोशिश कर रहे थे मगर मजमें के जोश को रोकना इनके वश में न था। आखिर बड़ी मुश्किल से अब्दुल ग़फ़ूर डब्बे से निकल सके। उन पर फूलों की बारिश हो रही थी। चेहरा हारों में छिप चुका था और लोग उनसे हाथ मिलाने के लिए इस तरह बढ़ रहे थे, जैसे उनके हाथ मिलाने के बाद ही उनको स्वराज्य मिल जायगा। वॉलन्टियर और कॉन्फ्रेन्स के लोग चाहते थे कि ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर को किसी तरह बाहर ले जाकर उस मोटर पर सवार कर दें जो उनके लिए फूलों से सजी तैयार खड़ी थी।

मगर ख़ुद अब्दुल ग़फ़ूर अपने इन पुजारियों का दिल तोड़ना नहीं चाहते थे। वो हर एक से हाथ मिलाते हुए इस मजमा के लहरों में थपेड़े खाते हुए आगे बढ़ रहे थे। आख़िर बड़ी मुश्किल से आध घण्टे के बाद ट्रेन से मोटर तक पहुँचे और अब यह मजमा जुलूस की शकल में आ गया। ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने मोटर में पहुँचते ही हमको अपने साथ ही बिठा लिया वर्ना हमको यहाँ कौन पूछता। इस मोटर पर हर तरफ से फूलों की बारिश हो रही थी और लोग टूटे पड़ते थे, ग़ाज़ी अब्दुल गफूर के दर्शना के लिए। एक तो हारों की वजह से उनका मुँह छुपा हुआ था, दूसरे मोटर में बैठ कर वो और भी छुप गए थे। इसलिए लोगों ने उनको पकड़ कर मोटर के बन्द-हुड पर बिठा दिया ताकि सभी दर्शन कर सकें। अब जुलूस चल चुका था। जमालपुर की सड़कों पर जगह-जगह फाटक लगे हुए थे जिस में किसी पर लिखा था 'मजदूरों के रहनुमा ज़िन्दाबाद' किसी पर लिखा था 'ग़ाज़ी अब्दुल गफ़ूर की जय' कहीं सुर्ख़ रंग के झण्डे लगे थे और कहीं बहुत से रंगों की झण्डियाँ। जगह-जगह पर दुकानदारों ने जलपान का इन्तज़ाम कर रक्खा था। रास्ते में दोनों तरफ एक भीड़ थी जो कॉन्फरेन्स के प्रधान को देखने के लिए बेकरार नज़र आती थी। कोठों पर औरतें और बच्चे थालियों में फूल लिए नज़र आ रहे थे कि जुलूस उधर से गुज़रे कि फूल बरसाये जायँ। ग़ाज़ी अब्दुल गफूर का जो हाल हो, जब कि हमको ख्वाब की

दुनियाँ की चहल-पहल मालूम हो रही थी। सच तो यह है कि हम अब्दुल ग़फ़ूर को लीडर समझते थे पर हमने उनको इतना बड़ा लीडर नहीं समझा, जितना बड़ा लीडर उनको जमालपुर के लोग समझ रहे थे। जिस तरफ से जुलूस गुज़रता था, नारों का एक तूफ़ान उमड़ आता था। मालूम होता था कि इस दुनियाँ मे सिवाय ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर के कोई नहीं। दो घण्टे तक शहर के खास-खास बाज़ारों मे घूमता हुआ यह जुलूस कॉन्फरेन्स के पण्डाल तक पहुँचा। आखिरकार इस जुलूस ने जल्से की शक्ल अख्तयार कर ली। जो लोग पण्डाल मे पहले से जमा थे उनके अलावा पण्डाल में पहुँच कर उसको खचा-खच भर दिया और कहीं तिल धरने की जगह बाक़ी न रह गई। ग़ाजी अब्दुल ग़फ़ूर ने मोटर से उतर कर पहले तो कॉन्फरेन्स के वालण्टियरों के 'गार्ड ऑफ ऑनर' की सलामी ली। फिर तालियों और 'ग़ाजी अब्दुल ग़फ़ूर ज़िन्दाबाद' के नारों की गूँज मे पण्डाल के अन्दर क़दम रक्खा। हम उनके साथ-साथ थे और हम इस इज्ज़त से फूले न समाते थे, कि इतने बड़े लीडर की दुम मे बँधे हुए है। हर तरफ से फोटोग्राफर ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर की तस्वीरे ले रहे थे और हर तस्वीर मे हम भी ज़रूर खिंच जाते रहे होंगे, हम तो गोया साथ ही थे। ग़ाजी अब्दुल गफूर के पण्डाल मे पहुँचने के बाद सब से पहले तो मज़दूर लड़कियों ने मज़दूरों का तराना गाया। इसके बाद एक भारी-भरकम

महाशय उठ कर डायस पर आए। मालूम हुआ कि आप रिसप्शन कमिटी के प्रधान है। आपने आते ही माइक्रोफोन में मुँह डाल दिया और माइक्रोफोन ने आपका ऐड्रेस सबको सुनाना शुरू कर दिया। इस ऐड्रेस मे और तो खैर सब वही बातें थी जो मजदूरो के बारे में कही जाती है, कि मजदूर मेहनत करते हैं, उनको बग़ैर हाथ-पैर हिलाए कोई कुछ नहीं देता और मजदूरी लेने वालो का यह हाल है कि वे खुद कुछ नही करते। मजदूरो की मजदूरी के बल-बूते पर सेठ बने बैठे हैं। इन सब बातो पर हमने तो कान भी नहीं धरा, इसलिए कि यह सब बाते सुन-सुन कर वैसे ही कान पक चुके है। मगर जब गाजी अब्दुल ग़फूर का जिक्र आया तब हम कान लगाकर सुनने लगे। हमारी आँखो के सामने वही चमर टुलिया वाला गुण्डा था, जो एक औरत को भगाकर लाया था और जिसने दुनियाँ की बहुत कम बदमाशियाँ ऐसी होगी, जो छोडी हो. जो लोफरो की तरह घूमा करता था, रास्ते मे नौटङ्की के गाने गाता हुआ निकला करता था, मगर हमारे देखते ही देखते यही गफूर लीडर बना, गाजी बना, शेरे-इस्लाम बना, और आज इसी के बारे मे हजारो आदमियो के सामने एक प्लेटफॉर्म से कहा जा रहा था, कि...

हमारी इस कॉन्फरेन्स के प्रधान ग़ाजी अब्दुल ग़फूर हिन्द के उन चन्द सपूतो मे से एक है जो अपना सब कुछ मुल्क और कौम के लिए कुर्बान कर चुके हैं। आपने एक ठेठ मुसलमान

लीडर की हैसियत से राजनीति में कदम रक्खा था और एक ज़माना तक आप सिर्फ मुसलमानों की रहनुमाई करते रहे, मगर आखिरकार आप से यह बात छिपी न रह सकी कि भूखों का कोई मज़हब नहीं। फाका-मस्तों का मज़हब सिर्फ रोटी की मॉग है। भूख हिन्दुओं को उतना ही सताती है, जितना कि मुसलमानों को परेशान करती है। भूखे-भूखे सब एक हैं, चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान। पीपल और ताज़िया दोनों के मानने वाले बग़ैर रोटी के नहीं रह सकते और अगर दोनों को पेट भर रोटी मिलने लगे तो यह भूखे आपस की इस नोच-खसोट को छोड़ कर एक हो सकेंगे। तहज़ीब तो ख़ुदा और इन्सान के दरमियान एक रिश्ता है; मगर रोटी की फ़िक्र हम ही को करना है। जब तक हिन्दू और मुसलमान एक प्लेटफ़ॉर्म पर आकर एक दूसरे की भूख का ख्याल न करेंगे, उस वक्त तक इस बला का मुकाबला नहीं हो सकता। ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने मज़दूरों की जो खिदमतें की हैं वह हमारे सामने हैं। मुकरजी-चटर्जी मिल की हड़ताल के मौक़े पर यह आप ही का दम था कि सीना तान कर सब के सामने आये और उस वक्त तक भूख हड़ताल किये हुए पड़े रहे जब तक मिल के मालिकों ने मज़दूरों की बात न मान ली। आज हम इस बात पर जितना भी नाज़ करें, कम है, कि हमारे ऐसे लीडर ने हमारी इस कॉन्फ़रेन्स की सिदारत मंज़ूर कर ली है और अपने निहायत

कीमती वक्त को मजदूरों की ख़िदमत के लिए कुर्बान करने का फैसला कर लिया है।

स्वागत कमिटी के इस ऐड्रेस के बाद गाजी अब्दुल ग़फूर बड़ी आन-बान के साथ तालियों के शोर और 'ग़ाज़ी अब्दुल ग़फूर की जै' के नारों के साथ एड्रेस पढ़ने के लिए खड़े हुए। गले में मजदूरों की गाढ़ी कमाई के उस रुपये से ख़रीदा हुआ, जगमगाता हुआ हार था, जो इन ग़रीबों ने अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट काट कर दिया होगा। ग़ाज़ी अब्दुल गफूर ने बड़े शान से खद्दर के लम्बे कुर्ते की जेब से ऐनक निकाल कर लगाई और इतमीनान के साथ वह ऐड्रेस पढ़ना शुरू कर दिया जिसके बहुत से रिहर्सल हम ख़ुद करा चुके थे। मगर इतने मरहलों के बाद भी अगर वह ऐड्रेस इस वक्त हमको पढ़ना पड़ता तो हमारे सारे जिस्म में जलजला होता, हाथ-पैर ठण्डे होते, गला सूख जाता, गला थरथरा जाता और हम ऐड्रेस पढ़ने के बजाय, मुमकिन था, कि यहाँ से भाग खड़े होते। मगर वाह रे मेरे शेर! उस पर जरा भी घबराहट न थी। एक-एक शब्द पर निहायत आला दर्जे बोलने वाले की तरह गर्दन हिला-हिला कर, हाथ चलाकर, और मेज पर घूँसे मार-मार कर वह ऐड्रेस पढ़ रहा था। जगह-जगह पण्डाल तालियों से गूँज उठता था और हर बार तालियाँ बजने के बाद हमारे शेर की आवाज़ में और गरज पैदा हो जाती थी। हमको तो आश्चर्य इस बात पर हो रहा था, कि अब्दुल ग़फूर ऐसी अच्छी ऐक्टिंग

क्यों कर रहा है ? अगर यह कम्बख्त लीडर बनने की जगह किसी फ़िल्म-कम्पनी में चला जाता तो बदमाश का पार्ट करने को इससे अच्छा आदमी शायद कोई न मिल सकता। ऐड्रेस में जगह-जगह आप की आँखों में आँसू भर आए, जगह-जगह आप की आवाज़ से रोने की हालत पैदा हो गई। कहीं आप ज़रा-सा मुस्करा दिए, कहीं एक दम जोश में गरज उठे। व्याख्यान के लिए उतार-चढ़ाव, आवाज़ के लिए मध्यम और पञ्चम का अन्दाज़ ही बहुत बड़ी चीज़ है और इस बात में गफ़ूर ने, मालूम होता है, बहुत बड़ा अभ्यास कर रक्खा था। हमने बहुत बड़े-बड़े तकरीर करने वालों को सुना था। कौन कह सकता था कि इस एड्रेस का एक शब्द भी इनका लिखा हुआ नहीं है और न ये हज़रत ख़ुद इस एड्रे का मतलब समझते हैं। इस वक्त तो इस जाहिल के सामने बड़े-बड़े मुँह खोले बैठे थे ! पत्र-प्रतिनिधि ऐड्रेस के खास-खास जुमलों को जल्दी-जल्दी लिख रहे थे, सी० आई० डी० के रिपोर्टर की पेंसिल कलाबाज़ियाँ खा रही थी और मालूम यह होता था कि इस जादूगर ने सारे पण्डाल पर जादू कर दिया है। सबसे ज़्यादा हम ख़ुद अपने ऊपर इस जादू का असर देख रहे थे। गफ़ूर की सारी ज़िन्दगी हमारे सामने थी और जो इस वक्त जो कुछ देख रहे थे उससे भी इन्कार नहीं हो सकता, बल्कि गफ़ूर की ज़बान से यह ऐड्रेस सुनकर हमको यह सन्देह होने लगता था कि यह हमारा ही लिखा हुआ है। ऐसा अच्छा

ऐड्रेस, जो इस उतार-चढ़ाव के साथ पढ़ा जा सके अगर अब कोई कहे तो क़यामत तक नहीं लिख सकते। इस ऐड्रेस में यह ख़ूबी थी कि कहीं तो मालूम होता था कि जैसे ग़फ़ूर फूल बरसा रहा है, कहीं यह अन्दाज़ा होता था कि जैसे आग लगा रहा है। सच पूछिये तो हमको ख़ुद नहीं मालूम हो रहा था कि ग़फ़ूर सिर्फ पढ़ने के अन्दाज से यह जादूगरी दिखा सकेगा। ग़फ़ूर ने एक घंटे में यह ऐड्रेस खतम किया और पण्डाल में ऐड्रेस के बारे में एक लहर दौड़ गई। ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने सब की तारीफों में मुस्करा देना ही मुनासिब समझा। मगर जब हमने भी तारीफ की तब आपने हमारे तारीफ का जवाब हमारे कान में दिया "यह तारीफ मेरी नहीं भैय्या, आपकी है। आप ने मेरी इज्जत रख ली।"

कान्फ्रेंस का यह इजलास तो इन दो ऐड्रेसों पर खतम हो गया इसके बाद प्रधान को और उनके साथ हमको एक कोठी में पहुँचा दिया गया जहाँ आराम की तमाम चीजें थीं। प्रोग्राम अब यह था कि खाना खाने के बाद प्रधान जी को थोड़ी देर आराम करने का मौका दिया जाय और इसके बाद इसी कोठरी में, सब्जेक्ट कमिटी की मीटिंग होने वाली थी। ग़फ़ूर को तो ख़ैर इतमीनान था, मगर हमको यह फिक्र थी कि एड्रेस तो ख़ैर लिखा हुआ था, वह इन हज़रत ने धूम-धड़क्के से पढ़ दिया मगर अब ये सब्जेक्ट कमिटी की मीटिंग में क्या करेंगे? सभापति की हैसियत से उनको बात-बात में दखल देना पड़ेगा।

मगर यह ठहरे जाहिल लट्ठ। इनकी समझ मे क्यों कर आएगा कि किस मौके पर बोले, और बोले भी तो क्या बोले ? हमने खाने के बाद ग़फ़ूर से कहा "ऐड्रेस की आई हुई तो टल गई अब बतलाइये कि सब्जेक्ट कमिटी की मीटिंग मे क्या होगा ?"

ग़फ़ूर ने वेपरवाही से कहा "आप तो साथ ही रहेंगे, आप देखिएगा कि क्या होता है ? अल्लाह ने चाहा तो आप की दुआ से यह पता किसी को भी न चलने दूँगा कि चौथी क्लास तक पढ़ा हूँ। आप को तो इसकी फिक्र थी कि मै एड्रेस किस तरह पढ़ूँगा।"

हमने कहा—"ऐड्रेस तो तुमने ऐसा पढ़ा है कि अब तक यक़ीन ही नही आता कि तुम ही पढ़ रहे थे। मै तो अगर ऐसा ख़्वाब भी देखता तो उसको भी हाज़मा की ख़राबी समझ कर टाल जाता। मगर साहब कमाल कर दिया। क्या कोई ख़ालिस लीडर पढ़ेगा, इस तरह अपना ऐड्रेस। मालूम होता था कि एक दरिया वह रहा है। आख़िर यह सारी बातें तुमको आ कहाँ से गईं ?"

ग़फ़ूर ने दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहा "यह सब उसकी देन है। और तो मैं कुछ जानता नहीं, मगर इतने ही दिनों में इतनी तक़रीरे की है, जलसों, कॉन्फ्रेन्सो और सभाओं मे शरीक हुआ हूँ कि अब इन बातों को देखते-देखते जैसे यह सारे करतब मुझको खुद आ गये है !

हमने हँस कर कहा—"इसका मतलब यह हुआ कि लीडर नहीं असल मे तुम मदारी हो।"

गफ़ूर ने वग़ैर हँसे हुए कहा—"सच कह रहे हो भैय्या, बिलकुल सच कहते हो, असली लीडर तो गिनती के होते होगे, बाकी तो सब के सब हमारे ऐसे बनास्पति-लीडर है। अब हम भी लीडरी के करतब दिखाते है। क्या यह हाथ की सफाई नहीं है कि हमने अपने को लीडर बना कर दिखा दिया है और सब लीडर समझ रहे है। ऐसे-ऐसे मदारी हमारी बिरादरी मे आप को न जाने कितने मिल जाएँगे।"

हमने कहा—"यह मै न मानूँगा। जो कमाल तुम दिखा रहे हो वह किसी और के बस की बात नहीं है। मैंने बड़े आदमियों की सिदारत देखी है। यह जो अक्सर राजा-महाराजा, नवाब-किस्म के लोग सदर चुन लिए जाते है उन सब के लिए ऐड्रेस लिखने वाले कोई दूसरे ही होते है। मगर वह बेचारे दूसरों का ऐड्रेस पढ़ते भी इस तरह हैं, कि साफ पता चल जाय कि उनका लिखा हुआ नही है। मालूम होता है कि अच्छा खासा रिकॉर्ड किसी खराब ग्रामोफोन पर बज रहा है। मगर तुम्हारा तो यह हाल था, कि रेकॉर्ड तो ख़ैर यों ही सा था मगर ग्रामोफोन बड़े ठाठ का था। यकीन जानो मैं अपना लिखा ख़ुद इस शान से नही पढ़ सकता, जिस शान से तुम मेरा लिखा पढ़ रहे थे।"

ग़फ़ूर ने हमारा हाथ दाबते हुए कहा—"ज़रा धीरे-धीरे बोलो दिवाल के भी कान होते है।" अब हमको भी ख्याल आया कि यह बात ज़रा ज़ोर से कह रहे थे और अगर कोई यह सुन लेता कि जो कुछ पढ़ा गया है, हमारा था तो यह बात ज़रा ग़फ़ूर मियाँ की बदनामी की थी। हमने आहिस्ता से कहा—"माफ़ कीजिएगा, मुझे ख्याल ही न रहा था।"

ग़फ़ूर ने बात टालते हुए कहा—"यह सब आदत की बात है भैय्या, मुझे अब तक़रीर करने में ज़रा भी मेहनत नहीं पड़ती। जो मुँह में आता है बकता चला जाता हूँ और मेरी इसी बकवास की लोग इतनी तारीफ़ करते हैं! अच्छा तुम अब कमेटी मे देखना कि मैं क्या करता हूँ।"

ग़फ़ूर यह कह ही रहा था, कि एक वॉलन्टियर ने आकर क़ौमी सलाम किया, फिर कहा—"कुछ अखबारों के रिपोर्टर आप से मिलना चाहते है।"

ग़फ़ूर ने बेपरवाही से कह दिया—"भेज दो भाई इनको, अब इन सब से भी सर खपाना पड़ेगा।"

इसी कमरे में अख़बारों के तीन-चार रिपोर्टर आकर इधर-उधर बैठ गए और ग़फ़ूर ने ख़ास लीडरों के अन्दाज़ में इनसे बात करना शुरू कर दिया।

"आप लोग जिस काम से आए है वह तो मुझको मालूम ही है मगर मुझको उम्मीद नहीं कि आप मुझसे मिल कर खुश होंगे।"

एक रिपोर्टर ने कहा—"हम आप का इन्टरव्यू चाहते थे और हमारी खास गरज यह है कि आप से कैबिनेट-मिशन के बारे मे पूछे।"

ग़फूर ने जरा भी घबराये बग़ैर कहा—"मै सिवाय मजदूरो के सवाल के और किसी सवाल मे न अपना दिमाग़ उलझाता हूँ और न आप के उलझाने से उलझ ही सकता हूँ।"

दूसरे रिपोर्टर ने कहा—"क्या आप के ख्याल मे मुसलिम लीग और कॉग्रेस मे समझौता हो जायगा ?"

ग़फूर ने कहा—"मजदूर कॉग्रेस और मुसलिम लीग दोनो से अलग है और दोनो मे शामिल है। फर्क यह है कि पेट-भरो ने अपने मतालबो (मॉगो) का नाम मुकम्मल आज़ादी (पूर्ण स्वाधीनता), आधी आज़ादी, हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, स्वराज्य, रामराज्य, इस्लामराज्य रख छोड़ा है और मज़दूर बेचारा सिर्फ यह कहता है, रोटी। उसके लिए रोटी ही इन सब का निचोड़ है। आप मजदूरो के अलावा मुझ से कुछ न पूछे।"

तीसरे रिपोर्टर ने कहा—"हिन्दुस्तान मे जो काल पड़ रहा है उसकी ज़िम्मेदारी किस पर है ?"

ग़फूर ने कहा—"काल और अच्छा हाल, यह सब बड़े आदमियो के सोचने की बाते है। मजदूर के लिए तो पहले भी काल था और अब भी काल है। मै इतना कह सकता हूँ कि अगर सचमुच ही काल पड़ रहा हे तो उसकी जिम्मेदारी कम से कम मजदूरो पर नहीं है।

कान्फ्रेन्स की सबजेक्ट कमिटियाँ हुईं, खुले हुए इजलास हुए, सब-कमिटियाँ बनाई गईं और आखिर तीन दिन की इस चहल-पहल के बाद आखिरी खुले इजलास मे मजदूरो के सुधार के लिए जब फण्ड खोला गया है तो सिर्फ वह हार, जो गफूर को पहले दिन पहनाया गया था, १०१२) रु० में नीलाम हुआ। और इसी तरह आखिर में आलान किया गया कि जो रकम मिल चुकी है वह बारह हजार सात सौ तेरह रु० है और जिन रकमो के वायदे हैं वह २५,०००) रु० तक पहुँचती है। ग़फूर ने खड़े होकर आलान कर दिया, कि जब तक मजदूरो के बच्चो के लिए एक अच्छा स्कूल खोलने के लिए कम से कम दो लाख रुपया जमा नहीं होता, उस समय तक इस चन्दे की फेहरिस्त को बन्द नही किया जा सकता, आप सब का फ़र्ज़ यह है, कि यह रक़म दौड़-धूप कर जमा करे। कॉन्फ्रेन्स मे यह पहिले ही तय हो चुका था, कि यह रक़म ग़फूर ही के पास रहेगी और वही मुनासिब मौके पर एक सब-कमिटी की राय से इसको सर्फ़ कर सकते हैं। इस रुपए को छोड़कर, स्वयं ग़फूर को एक थैली दी गई थी

जिसमे एक हज़ार एक सौ एक रुपये थे और जिसके लिए ग़फ़ूर ने तालियो के शोर मे यह आलान कर दिया था कि यह रकम मैं अपनी तरफ से मजदूर फण्ड में देता हूँ।

जो रक़म मिली वह अलग, जो आवभगत हुई वह घाते में और जो इज्ज़त हुई, उसका तो पूछना ही क्या? अब किसके मुँह में इतने दाँत थे, कि वह ग़फ़ूर की लीडरी में कोई शक करता? ख़ैर ग़फ़ूर को तो जो कुछ मिला, वह मिला, मगर ख़ुद हमको भी बहुत बड़ा सबक मिला। हमने इस कॉन्फ्रेन्स के सिलसिले मे सच तो यह है, कि ग़फ़ूर से बहुत कुछ सीखा और उस क़ौम को बहुत कुछ समझा, जिसके लीडर ग़फ़ूर के ऐसे लोग हो सकते है। सबसे बड़ा जो इतमीनान हमको हुआ, वह यह था, कि इस क़ौम को आज़ाद होने का अभी सचमुच कोई हक़ नहीं है। अभी तो अक़्ल तक के दर्वाज़े नहीं खुले हैं, आज़ादी का दर्वाज़ा क्या खाक खुल सकता है? हम इस कॉन्फ्रेन्स के हर इजलास मे, हर मीटिंग मे और हर मौक़े पर इस बात का इन्तज़ार ही करते रह गए, कि अब कोई समझदार इस भीड़ मे से उठेगा और ग़फ़ूर की जहालत को सब के सामने खोलकर रख देगा। इस मजमे मे पढे-लिखे लोग भी थे, अखबारों के प्रतिनिधि, वकील, बैरिस्टर, स्कूलों के अध्यापक, रेलवे के चलते हुए लोग: पर किसी ने इस बहरूपिए को न पहचाना। हमको तो रह-रह कर इस बात पर अचरज होना था, कि इस भीड़ मे सर तो बहुत दिखाई दे

रहे है मगर इनमें से क्या किसी सर मे दिमाग़ नहीं है, सब ही मे घास भरी हुई है ? फिर गफ़ूर की जादूगरी का कायल होना पड़ता था, कि वह किस ख़ूबसूरती से सब की आँखो में धूल झोंक रहा है। ग़फ़ूर के सम्बन्ध मे विचित्र बाते वहाँ मशहूर थीं। जितने मुँह थे, उतनी ही बाते हमने ख़ुद अपने कानों से लोंगो को कहते सुना

"इतना बड़ा आदमी और कौम के लिए ये दुख उठा रहा है।"

"घर की सारी रियासत ख़ाक मे मिला दी। सुना है अब ज़मीन पर सोते है और सिर्फ एक समय खाते है।"

"लोहे का बना हुआ आदमी है। गवर्न्मेण्ट ने सुना है गवर्नरी-तक देनी चाही मगर तौबा कीजिए, ज़रा जो इनकी नीयत बदली हो।"

"सुना है कि 'सर' का खिताब जो मिलने वाला था, उसे लेने से भी इन्कार कर दिया।"

"अजी 'सर' के ख़िताब की क्या हकीक़त है इनके सामने।"

"विक्टोरिया मिल से जिस वक्त़ गोली चली है, सब के आगे सीना तान कर निकल आए थे।"

"हाँ साहब, यही तो कुर्बानियाँ हैं, जिनकी बदौलत आज यह इज़्ज़त पाई है।"

"अब तो सुना है, कि भूख-हड़ताल करने वाले हैं, कि जिस दिन स्कूल के लिए दो लाख आ जायगा, उसी दिन यह व्रत तोड़ा जायगा।"

"अजी दो लाख रुपया तो उनके एक इशारे पर आ जायगा। स्कूल के लिए चन्दा खुलते ही हर तरफ से रुपयों की वारिश शुरू हो जायगी। बारह-तेरह हज़ार तो जमा हो ही गया है, पच्चीस हजार के वायदे हैं और जब शहर-शहर और गाँव-गाँव में चन्दा जमा होगा तो दो लाख जमा होते देर ही क्या लगती है?"

यही चर्चे छोड़ कर हम लोग जमालपूर से रवाना हो गए। जब गाड़ी 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' 'गाजी अब्दुल ग़फूर की जय' 'मजदूर के रहनुमा ज़िन्दाबाद' के नारों की गूँज में रवाना हो चुकी तो ग़ाजी अब्दुल ग़फूर ने हमारे करीब खिसकते हुए कहा "भय्या काम का वक्त तो अब आया है। मैं अपना काम बहुत कुछ कर चुका और जो बाक़ी है, वह भी हो जायगा मगर अब स्कूल सँभालना तुम्हारा काम है।"

हमने तआज्जुब से कहा—"मेरा काम? मुझसे क्या मतलब? मैं अपनी नौकरी करूँगा या यह ज़िम्मेदारी लेकर बैठूँगा?"

अब्दुल ग़फूर ने बड़े इतमीनान से कहा—"अब नौकरी-चाकरी को सलाम करो। क्या मिलती है तुमको तनख्वाह?"

हमने कहा—"ढाई सौ मिल रहे हैं और चार सौ तक की तरक्की है।"

गाजी अब्दुल गफूर ने दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहा—बस ? इतना काबिल आदमी और इन कौड़ियों के मोल बिक कर रह गया है। मैं तो कभी तुमको यह नौकरी न करने दूँगा। तुमको अपनी तनख्वाह से मतलब है। ढाई सौ नहीं, बल्कि पूरे चार सौ जो तुम्हारी इन्तहाई तनख्वाह है, वह तुमको घर बैठे मिल जाया करेंगे। ठाठ से स्कूल की मैनेजरी करो।"

हमने कानों पर हाथ रख कर कहा—"ना बाबा ! यह मेरे बस का रोग नहीं। लगी-लगाई सरकारी नौकरी नहीं छोड़ सकता इस आमदनी का क्या भरोसा ? आज है कल नहीं। मेरी नौकरी पेन्शन वाली है, जिन्दगी-भर का सहारा। किसको मिलती है आजकल सरकारी नौकरी ?"

गाजी अब्दुल गफूर ने मुँह चिढ़ा कर कहा—"क्या सरकारी नौकरी, सरकारी नौकरी की रट लगाई है ? इतने समझदार आदमी होकर ऐसी बातें कर रहे हो। तुम्हारी नौकरी कोई यों ही थोड़े ही छूट जायगी। सारी दुनिया में धूम मच जायगी, कि कौमी काम के लिए सरकारी नौकरी पर लात मार दी। स्कूल को तुम जानते क्या हो कि क्या होगा ? जिस स्कूल के लिए लाखों रुपये बैङ्क में जमा हों, उस स्कूल की मैनेजरी कोई मामूली चीज़ है ? और तुमको तो मेरा प्रोग्राम

ही नहीं मालूम है, कि मैंने तुम्हारे लिए क्या सोच रक्खा है। अपनी टक्कर का लीडर न बनवा दूँ तो ग़फ़ूर नहीं, चमार कहना।"

यह कहकर वह कुछ और हमारे क़रीब आ गया और कन्धे पर हाथ रख कर कहने लगा—"अभी तो हमारी और तुम्हारी टक्कर होगी। अन्दर-अन्दर हम दोनों मिले रहेंगे और अखबारों मे और जुलूसों में एक दूसरे के खिलाफ खूब ज़हर उगलेंगे। तुमको शायद यह मालूम नहीं है, कि रोजाना अखबार "इस्लाम" अपना ही अखबार है। मेरे इशारे पर उसको दस हजार रुपया साल मिल रहा है मगर मैं चाहता हूँ, कि एक अखबार बिल्कुल अपना ही हो। अब मैं तुम्हारी तरफ से एक अखबार रोज़नामा (दैनिक) 'मज़दूर' नाम से निकलवा दूँगा। इन दोनो अखबारों को चलाने की तरकीब यह होगी कि एक अखबार दूसरे अखबार के खिलाफ रोज़ कोई न कोई तूफ़ान उठाता रहे; इस तरह ये अखबार भी चलेंगे और हम दोनों की लीडरी भी। अभी कुछ दिन तक तो हम दोनो मिलकर काम करेंगे, इसके बाद दुनिया को दिखाने के लिए दोनों, एक दूसरे के खिलाफ हो जाएँगे और मज़दूरों की दो पार्टियाँ बना देंगे। एक तुम्हारा साथ देगी, दूसरी मेरा। बस यह है, कि जब तक आपस में लड़ाई-झगड़े न हों, उस वक्त तक हम लोगों की गाड़ी चल ही नहीं सकती। हमारी लीडरी सुलह, सफाई और अमन-शान्ति के साथ चार

दिन भी नही चल सकती। ज़रूरत है हंगामों की, शोरोगुल की और जूती-पैज़ार की!"

हम ग़फ़ूर की बातें सुन-सुन कर सोच रहे थे, कि शैतान बेचारा तो बेकार ही को बदनाम है। शैतान तो हम ही मे, हमारी ही शक्ल-सूरत के पैदा होते रहते हैं। अब इस भेड़िए को देखिए जो ऊपर से भेड़ बना हुआ फिरता है और अन्दर ऐसी ऐसी शरारतें भरी हुई हैं। जब वह अच्छी तरह समझा चुका तो हमने कहा—"यह सब ठीक है, मगर यह तो अच्छी-खासी बेईमानी हुई। डकैती मे और लीडरी में फर्क ही क्या है?"

गफ़ूर ने आँखें निकाल कर कहा—"डकैती हो या कुछ, मगर ग़ुलामी, जो तुम कर रहे हो, उससे हजार दर्जा बेहतर है।"

हमने कहा—"कुछ भी हो, मगर मेरा दिल जैसे कुछ नफरत-सी कर रहा है इस ज़िन्दगी से।"

ग़फ़ूर ने हँस कर कहा—"हम तो तुम्हारी भलाई के लिए बता रहे हैं और अपना समझ कर बतला रहे हैं, वैसे तुमको अख्तयार है; मगर यह समझ लो, कि अच्छा मौका हाथ से खो रहे हो।"

हम चुप हो रहे. इसलिए कि हम इसके लिए बिल्कुल तैयार न थे और न ग़फ़ूर की सोहबत ने हमको ऐसा शैतान बना दिया था, जैसा कि वह ख़ुद था। ग़फ़ूर ने भी हमको राजी

न देख कर, इस समय इस ज़िक्र को खत्म कर दिया, मगर शेरपुर पहुँचने के बाद दूसरे ही दिन वह तमाम रुपए लेकर फिर हमारे पास आ गया और हमसे कहा, कि "इसको बैङ्क में जमा करके अपने दस्तखत बैङ्क में दे दो; इसलिए कि तुम ही को स्कूल की मैनेजरी करना है और चेक तुम्हारे ही दस्तखत से भुना करेंगे।" मगर उस समय भी हमने मज़बूती से काम लेकर ग़फ़ूर से क्षमा माँग ली कि यह ज़िम्मेदारी किसी और के सुपुर्द करो। ग़फ़ूर ने लाख-लाख कहा मगर हम किसी तरह न माने और अपने दफ्तर चले गए।

जो बात होने वाली होती है, वह होकर ही रहती है। दफ्तर पहुँचते ही हेड ऐसिस्टेण्ट की एक स्लिप हम को अपनी मेज पर मिली, जिसमें हमारे काम की कुछ शिकायतें थीं और हमसे जवाब तलब किया गया था। काम के खराबी की ज़िम्मेदारी हम पर ज़रा कम आती थी, मगर हेड-ऐसिस्टेण्ट ने अपनी ग़लतियाँ भी हमारे ही सर थोप कर, ज़रा बदतमीज़ी के साथ यह स्लिप लिखा था। देखते ही हमको बड़ा ग़ुस्सा आ गया और हमने बहुत ही सख्त जवाब लिखा। थोड़ी ही देर में रजिस्ट्रार साहब के यहाँ हमको बुलाया गया और रजिस्ट्रार साहब ने हमसे कहा कि या तो हेड-एसिस्टेण्ट से माफी माँगो या इस्तीफा दे दो।—हमको भी ग़ुस्सा तो था ही, उसी समय इस्तीफा लिख कर रजिस्ट्रार साहब को दे दिया जो फौरन मञ्ज़ूर कर लिया गया और हम दफ्तर से ग़ुस्से में

खौलते हुए घर आ गए। नौकरी छोड़ने को तो छोड़ दी थी मगर सवाल अब यह था, कि करे तो क्या करे ? हम इसी सोच-विचार मे बैठे थे, कि ग़ाजी अब्दुल ग़फूर को दूर से आता हुआ देख कर हमने तय कर लिया, कि हम अब ग़फूर की राय पर अमल करेंगे। यह फ़ैसला एक दम हमारे दिल ने किया और हम उठ कर ग़फूर की तरफ दौड़ते हुए बोले—"लीजिए जनाब ! आपके हुक्म की तामील हो गई। मैंने सुबह आप से, इसलिए कुछ न कहा था, कि मुझे अपनी नौकरी की तरफ से यकीन न था, कि मैं इसे आसानी से छोड़ सकूँगा मगर जब मैंने इस्तीफा दिया तो वह फौरन मञ्जूर हो गया और अब मै किसी का नौकर नहीं हूँ।"

गफ़ूर की आँखे एक दम चमक उठी। उसने हमको लपटाते हुए कहा—"शाबाश ! यह काम किया है तुमने। तबीयत ख़ुश कर दी। अब देखना कि तुम कुछ ही दिनों मे कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हो। अब ज़रा कल का अखबार देखना कि वह तुमको क्या से क्या बना देता है। बस अब यह साथ ज़िन्दगी का साथ है। आओ हम दोनो मिल कर क़सम खाएँ, कि एक दूसरे को कभी न छोड़ेंगे !"

हमने कहा—"कमाल करते हो ग़फूर भाई ! तुमको छोड़ना होता तो लगी-लगाई नौकरी क्यो छोड़ता ?"

गफ़ूर ने मोहब्बत से हमारा हाथ दबाते हुए कहा—"यक़ीन जानो मुझ को यह मालूम हो रहा है, जैसे मुझ में दूनी

ताकत पैदा हो गई है। अब हम दोनों मिल कर तो आफ़त मचा देंगे। अच्छा अब मुझको जाने दो, मुझे रोज़ाना अखबार 'इस्लाम' के दफ्तर जाना है, अब कल मुलाक़ात होगी।"

गफ़ूर तो यह कह कर चला गया और हम नई ज़िन्दगी पर ग़ौर करते रहे। यहाँ तक कि रात हो गई। बिस्तर पर भी सिर्फ यही ख्याल सोने के वक्त तक रहा और सुबह उस वक्त आँख खुली जब अखबार बेचने वाला हमारे ही मकान के नीचे चीख़ रहा था :

सरकारी अफसर मज़दूर बन गया। मौलवी मोहम्मद अहमद ने सरकारी मुलाज़मत पर लात मार दी! शेर-इस्लाम ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर का बयान!! मौलवी मोहम्मद अहमद साहब मज़दूरों का झण्डा लहराएँगे!!! हमने जल्दी से अखबार मँगा कर पढ़ना शुरू किया :

शेरपूर : ७ जुलाई—मज़दूर कॉन्फ्रेन्स, जमालपूर में शिरकत करने के बाद हमारे शहर के क़ाबिल और नौजवान सरकारी अफ़सर मौलवी मोहम्मद अहमद साहब ने अपने लिए सरकारी मुलाज़मत को लानत समझ कर आज ही इस्तीफा देकर अपने को मजदूरों की खिदमत के लिए पेश कर दिया है। हमारे हर दिल अज़ीज़ लीडर, ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने मज़दूर कॉन्फ्रेन्स के प्रधान की हैसियत से मौलवी मोहम्मद अहमद साहब के इस इस्तीफे पर बयान देते हुए फर्माया है, कि यह मज़दूरों की ख़ुशक़िस्मती है कि उनको एक ऐसा काम करने

वाला मिला है, जिसको मै अपने हाथ मे तलवार का आ जाना समझता हूँ। मौलवी मोहम्मद अहमद साहब की क़ाबलियत, जो अब तक ग़ुलामी की ज़ञ्जीरों मे जकड़ी हुई थी, अब मज़दूरो के काम आएगी। गाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर साहब ने मौलवी साहब का इस्तकबाल (स्वागत) करने के लिए एक जल्सा आज ही मज़दूर-मैदान मे करने का फैसला किया है जिसमे फख्रे-कौम मौलवी मोहम्मद अहमद मज़दूरो का झण्डा लहराएँगे और तकरीर भी करेंगे। मज़दूरो का फर्ज है, कि वह हजारो की तादाद मे जमा होकर अपने इस लीडर का स्वागत-सत्कार करे जिसने उनके लिए अपनी ज़िन्दगी की हर तरक्की को क़ुर्बान कर दिया है.........."

अख़बार पढ़ कर हमारा सर चकरा गया कि अब क्या होगा। हज़ारो आदमियो की भीड़ मे हमसे बोला कैसे जायगा और झण्डा लहराने की रस्म कैसे हम अदा कर सकेंगे। हम अभी यह सोच ही रहे थे, कि ग़ाजी अब्दुल ग़फूर अपनी दाढ़ी लहराते (जो अब ख़ूब घनी हो गई थी) और अपना डण्डा बजाते आ मौजूद हुए और आते ही बोले—"पढ़ लिया आज का अख़बार? आज रोजनामा 'इस्लाम' का ख़ास "मोहम्मद अहमद नम्बर" निकल रहा है जो शाम को जलसे मे बेचा जायगा। अभी किसी के हाथ अपनी तस्वीर और अपना स्टेटमेण्ट (वक्तव्य) भिजवा दो।"

हमने कहा—"बयान कैसा?"

ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने कहा—"काग़ज़ उठाओ और लिखो। मतलब मै बताए देता हूँ उसको लिख तुम लेना। इस बयान में बस यह लिखो, कि मै ज्यादा अर्से तक अपने दिल की आवाज़ सुनने से इन्कार नहीं कर सकता था, मैंने जो कुछ किया है वह मज़दूरों की ख़िदमत के लिए किया है। मै ख़ुद मज़दूर हूँ मगर अब तक अपनी मज़दूरी से सरकार की ख़िद-मत कर रहा था और अब ख़ुद अपनी, अपने भाइयों की और अपने ही ऐसे दूसरे मज़दूरों की ख़िदमत करूँगा। मेरे लिए इस सरकार की नौकरी अब मुमकिन नहीं रही थी। जिस हुकूमत मे मज़दूर के पेट के लिए रोटी और मज़दूर के तन के लिए कपड़ा न हो, मैं उस हुकूमत की ख़िदमत क्यों करता? जो सरकार मुझ-जैसे मज़दूरों की ताक़त चूस-चूस कर अपनी ताकत बढ़ाती जाती है, मगर मज़दूर जिस गहराई मे गिरा हुआ है, उससे उभरने का उसे मौका नहीं देती। मज़दूरों के बच्चे, आदमी के बच्चे नहीं समझे जाते। उनके लिए तालीम का इन्तज़ाम नहीं है, वह इसीलिए पैदा होते है, कि बढ़ कर मज़दूर बने और जानवरों की तरह मेहनत करके अपनी मेहनत का फल दूसरों को खिलाएँ और ख़ुद फ़ाक़ा करें। मैं मज़दूर होकर उस सरकारी-मैशीन को चलाने के लिए नौकरी नहीं कर सकता था, जो मज़दूरों का ख़ून चूसने के लिए दिन-रात चल रही हैं। मैंने अपने दिल की आवाज़ पर यह नौकरी छोड़ी है और अब मै मज़दूरों मे मज़दूर बन कर रहूँगा।"

यह बयान सुन कर हमने ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर से कहा—"यार ! इस बयान को इससे ज़्यादा मै क्या ख़ाक ख़ूबसूरत बना सकता हूँ ? जिस कदर ख़ूबसूरत तरीके पर तुमने बयान किया है, मै उसको लिख देता हूँ ।"

यह कह कर हमने यही बयान लिखा और अपनी तस्वीर के साथ अखबार के दफ्तर भेज दिया । बयान भिजवाने के बाद ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने बतलाया, कि "लीडर बस इसी तरह बना करते है । अब आज से तुम पक्के लीडर बन गए। शाम को देखना ख़ुद अपनी शान ! मगर तक़रीर ज़रा शान से करना। "

हमने कहा—"बस यही मुशकिल है। मुझसे तक़रीर-चकरीर न हो सकेगी।"

ग़फ़ूर ने कहा—"होगी कैसे नही । तक़रीर तो मै कराऊँगा तुमसे । बस इसी क़िस्म की तक़रीर करना, जैसा यह बयान दिया है। अब आज तो मुझको जल्से का इन्तजाम करना है। कल तुम स्कूल का रुपया बैङ्क मे जमा करा दो, मैनेजर स्कूल की हैसियत से, जिसका आलान (घोषणा) आज के जल्से मे ख़ुद मै करुँगा। "

हमने कहा—जो चाहो करो, अब तो मै तुम्हारे साथ ही हूँ ।"

ग़ाज़ी अब्दुल गफूर हमारी पीठ पर थपकियाँ देते हुए चले गए और हमने कमरा बन्द करके अपनी तकरीर

(व्याख्यान) का रिहर्सल शुरु कर दिया ! मगर जितना-जितना व.क्त क़रीब आ रहा था, हमारे हाथ-पैर फूलते जा रहे थे, कि देखिए क्या होता है ! तक़रीर के हर रिहर्सल मे यह मालूम होता था, कि कुछ और भी बेढगे हो गए है !! इस ख्याल ही से मौत आ रही थी, कि हज़ारो आदमियो का मजमा होगा और हम बोल रहे होगे। मगर मौत का वक्त टलता नही और वह बहुत तेज़ी से क़रीब ही आता जा रहा था। आखिर दिल ही दिल में हमने एक तक़रीर तय्यार करली, जो कुछ इस क़िस्म की थी: भाइयो! आपने मुझको अपने मे शामिल करके, जो .खुशी इस वक्त मनाई है, वह मुझको सरकारी नौकरी की ज़िन्दगी मे कभी हासिल नही हुई। आपके और हमारे लीडर ग़ाज़ी अब्दुल ग़फूर साहब ने मेरा ज़िक्र जिस तरह किया है, उससे .खुद उनकी बड़ाई का पता चलता है। मेरे लिए दुआ कीजिए कि मैं आपकी कुछ खिदमत कर सकूॅ। वह एक कहावत है कि, टाट का पैवन्द टाट में और मखमल का पैवन्द मखमल मे सजता है। वही बात यहॉ पूरी हो रही है। मै अब तक टाट का वह टुकड़ा था जो मखमल मे पैवन्द की तरह लगा हुआ था, अब सरकारी नौकरी छोड़ कर आप से आ मिला हूॅ; तो मालूम होता है, कि टाट का पैवन्द टाट मे इस तरह लग गया है, कि पैवन्द (जोड़) का पता ही नही चलता.....”

हम अभी अपनी तकरीर तय्यार भी न कर पाए थे, कि ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर फूलों से सजी हुई एक मोटर मे आ मौजूद हुए और हमको उसी मोटर में लेकर 'मज़दूर-मैदान' की तरफ रवाना हो गए। मज़दूर-मैदान मे सचमुच हज़ारों आदमी जमा थे। हर तरफ मज़दूरों के झण्डे लहरा रहे थे, वॉलण्टियर (स्वयं-सेवक) इन्तज़ाम कर रहे थे, और स्टेज दुल्हिन की तरह सजा हुआ था। हमारी मोटर के पहुँचते ही एक नारा बलन्द किया गया 'मौलवी मोहम्मद अहमद ज़िन्दाबाद' 'मजदूर-मज़दूर एक हो' 'कुल्हाड़ी ज़िन्दाबाद' 'खुरपा ज़िन्दाबाद' 'हथौड़ी ज़िन्दाबाद' "ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ज़िन्दाबाद".....हम दोनो ज़िन्दाबाद, यानी हम और ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर मोटर से उतरे तो ग़ाजी अब्दुल ग़फ़ूर ने अपना डण्डा हवा मे नचा कर बड़ी ज़ोर से चीख कर कहा—"मजदूरों के लीडर मौलवी मोहम्मद अहमद की जै" और सारा मैदान हमारी जय के नारों से गूँज उठा। हमने हाथ जोड़ कर सबको सलाम किया। उस वक्त हर तरफ से हमारे ऊपर फूल फेके जा रहे थे और लोग हम पर टूटे पड़ते थे। प्रेस-फोटोग्राफर्स क़दम-कदम पर हमारी तसवीरे ले रहे थे। आख़िर बड़ी मुश्किल से इस मजमे को चीरते हुए हम स्टेज तक पहुँचे। हमारे पहुँचते ही एक महाशय जी ने खड़े होकर यह तजवीज़ पेश की कि इस जल्से के सद्र (सभापति) ग़ाजी

अब्दुल ग़फ़ूर हों। ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर तो गोया पहिले ही से तय्यार बैठे थे। फ़ौरन तालियों की गूँज मे सभापति बन बैठे।

ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने अपनी तक़रीर में हमारे लिए न जाने क्या-क्या कहा; मगर हम ठीक तरह, इसलिए न सुन सके, कि हमको .खुद अपनी तक़रीर का बु.खार चढ़ रहा था। हम जानते थे, कि अब हमको बोलना है; बस इसलिए हम अपनी तक़रीर याद करने मे लगे हुए थे। हाथ-पैरों मे एक कपकपी थी, पसीना कुछ .ज्यादा निकल रहा था, साँस जैसे घुटी जाती थी, दिल बैठ-सा रहा था और नब्ज़ कम्बख्त का तो पता ही न था!

न जाने ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर क्या-क्या कहते रहे। कभी-कभी लोगों की तालियों की आवाज़ पर हम अपनी तक़रीर का सिलसिला गड़बड़ कर बैठते थे; वरना हमारी सारी तवज्जह (ध्यान) .खुद अपनी तक़रीर की तरफ़ थी, कि यह जो ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने ढोंग रचा है, यह सब कहीं हमारी तक़रीर से चौपट न हो जाय और कहीं हम .खुद अपनी कलई न खोल दे! दिन भर जिस तक़रीर का रिहर्सल किया था वह, न जाने क्यों इस व.क्त हमसे मज़ाक करने पर तुली हुई थी। उसका एक-एक शब्द हम से आँख-मिचौनी खेल रहा था और हम सटपटाए जाते थे, कि आखिर होगा क्या? आख़िर हमने

तक़रीर याद करना छोड़ कर, यह सोचना शुरू कर दिया, कि तक़रीर न करने के क्या-क्या बहाने हो सकते हैं? दिल ने कहा, कि भाग निकलो, दूसरी राय दिल ने यह दी, कि बेहोश हो जाओ! लोग समझेंगे, कि मज़दूरों की दुर्दशा का कितना भयानक असर पड़ा है मौलवी साहब के क़ल्ब पर! तीसरा ख्याल आया, कि रोना शुरु कर दो ज़ोर-ज़ोर से, चौथा ख्याल यह था, की ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर का डंडा उठा कर, ख़ुद उन्हीं पर 'लाठी चार्ज' की मश्क़ (अभ्यास) की जाय; मगर इनमें से कुछ भी न हो सका और आख़िर हमारे कानों ने, यह आवाज़ सुन ली, अब हमारे रहनुमा (पथ-प्रदर्शक), हमारे लीडर मौलवी मोहम्मद अहमद साहब ख़ुद अपने ख्यालात आपके सामने पेश करेंगे! सारा मैदान तालियों की आवाज और "मौलवी मोहम्मद अहमद ज़िन्दाबाद" के नारों से गूँज उठा! ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर-कम्बख्त ने हमको इशारा किया, कि हम तकरीर करने के लिए खड़े हो जाएँ और हमको खड़ा हो जाना पड़ा; मगर अब जो कोशिश करते हैं आवाज़ निकालने की तो पता चला, कि हलक़ (गला) बन्द है। लोग तालियाँ बजा-बजा कर थक चुके थे और बहुत से लोगों ने जब हमको चुपचाप खड़े देखा, तो समझे कि शायद हम लोगों के 'चुप होने का इन्तजार कर रहे हैं'। दस-पाँच 'ख़ामोश-ख़ामोश' की आवाज़ें उठाई गईं और आख़िर सब चुप हो गए। ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने चुपके से कहा—

"बस शुरू हो जाओ!" और हमारे दिल ने इस तरह धड़कना शुरू किया, जैसे कोई दिल को उठा-उठा कर पटख (पटक) रहा है? ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने फिर जोर देकर चुपके से कहा—"शुरू कर दो ना।" हमने दाँत खींच कर आँखें बन्द कर लीं और जान पर खेल कर सिर्फ आवाज़ निकालने की ही कोशिश की; फिर चाहे वह आवाज़ कैसी ही निकले और आखिर न जाने हमसे किस तरह सिर्फ यह कहा गया—"भाइयो"। अब जो आँखे खोलकर देखा तो सब हमारा मुँह देख रहे थे। हमने जल्दी से फिर आँखें बन्द कर के कहा—मजदूरों! यानी मेरा मतलब यह है, कि मज़दूर भाइयों!! अब सवाल यह था कि क्या कहें। किसी ने आवाज़ उठाई। फर्माइए-फ़र्माइए! और हमने जल्दी-जल्दी कहना शुरू किया—"आप टाट हैं मज़दूर भाइयो, आप टाट है! वही टाट, जिसकी बोरियाँ बनाई जाती हैं, जिसमे आलू भरे जाते हैं और जिसमें गेहूँ भर-भर कर बाहर जाता है और जिसको आप अपने कन्धों पर लादते है। आप मज़दूर हैं और आप ही टाट हैं। मेरा मतलब यह, कि मै भी टाट हूँ और टाट मे टाट ही का पैवन्द सजता है। मै सरकारी नौकरी करके अपने को मखमल समझ रहा था, मगर मखमल बहुत महँगी मिलती है, बल्कि नकली मिलती है। नकली मखमल दो-चार दिन मखमल रहता है; फिर न मखमल रहता है, न

टाट! मगर आप टाट जरूर हैं और मै बिल्कुल मखमल नहीं हूँ। अब तक मखमल मे टाट का पैवन्द लगा हुआ था, मगर अब टाट का पैवन्द टाट ही में लगेगा।"

ग़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर ने बड़ी जोर से चीख़ कर कहा—"मौलवी मोहम्मद अहमद की जै" और सब ने हमारी 'जय' के नारे जो लगाए, तो हम सचमुच भूल गए, कि हम क्या कर रहे थे। आखिर हमने कहा, कि कुछ कह चलो, फिर देखा जायगा। मुट्ठियाँ बन्द करके एक बार फिर बोलना शुरु कर दिया। अब्दुल गफ़ूर ने मेरे लिए जो कुछ कहा है, वह सब उनकी बड़ाई है। मेरी तो वही कहावत है कि टाट। मगर मै टाट वाली बात अभी कह चुका हूँ। अब मेरा मतलब यह है, कि आप मजदूर हैं। मै, मैं भी कुछ यूँ-ही सा हूँ, मेरा मतलब है, कि टाट। वह, यानी मखमल, बल्कि देखिए न, कि आप मज़दूर है और मजदूरो पर कैसे-कैसे ज़ुल्म हो रहे है, कि उनको पेट भर रोटी और तरकारी, बल्कि तरकारी तो बिल्कुल नही मिलती..."

गाजी अब्दुल ग़फ़ूर ने हमारी जान बचाई और खड़े होकर कह दिया, कि भाइयो! रात बढ़ रही है, झण्डा लहराने की रस्म अभी बाकी है। मौलवी मोहम्मद अहमद साहब अब आपके हैं। इनसे हजार मर्तबा तकरीर सुनेगे। यह रस्म पहले अदा हो जाय। दूसरे मौलवी साहब बहुत थक चुके है। आज दिन-भर अखबारो को बयान देते रहे और मिलने वालों का

तॉता बॅधा रहा! इन बेचारों को आराम का मौक़ा भी दीजिये।"

हम बैठ गये और फिर हमको फौरन झण्डा लहराने के लिए मैदान मे आना पड़ा। यह तो ख़ैर एक रस्म थी। एक डोरी पकड़ कर खींच ली गई, मगर उस मौक़े पर भी हमको कुछ कहना चाहिये था; मगर ख़ुदा भला करे ग़ाज़ी अब्दुल ग़फूर का, कि हमारी जगह वह बोल उठे—"भाइयों, मौलवी मोहम्मद साहब के लहराए हुए इस झण्डे की लाज अब तुम्हारे हाथ है। यह तुम्हारी और तुम्हारे क़ौम की इज्ज़त का निशान है। इज्ज़त के पीछे जान तक की परवाह नही की जाती, अब देखना यह है, कि तुम इस झण्डे के इशारों को किस तरह समझते हो और उसकी लहरों को कहाँ तक पहुँचाते हो।" इस छोटी-सी तक़रीर के बाद ग़ाज़ी अब्दुल ग़फूर हमको लेकर मोटर पर रवाना हो गए और मैदान मे हमारी जय के नारे रात भर उठते रहे।

घर आकर ग़ाज़ी अब्दुल ग़फूर ने कहा—"यार तुमने तो कमाल ही कर दिया। ऐसा भी क्या घबराना, कि अब जो तुमने टाट की रट लगाई है; तो न जाने क्या-क्या बकते चले गए! न किसी बात का सर न पैर।" हमने कहा—"भाई, वह तो मैं तुमसे पहले ही कह चुका था, कि मुझसे तकरीर-वक़रीर न होगी; मगर तुम न माने! ज़रा मेरा हाथ पकड़ कर देखो किस क़द्र सख्त बुख़ार चढ़ आया है। अगर इस

क़िस्म की एक-आध और तक़रीर करनी पड़ी तो मुझे तो तपेदिक हो जायगा, इसमे शक नही!"

ग़ाजी अब्दुल ग़फूर ने हँस कर कहा—"वह तो कहो मजमा था जरा बेवकूफ़ो का, नही तो तुमने लुटिया डुबोने मे कोई कमी न छोड़ी थी।" यह कह कर हमारा हाथ जो पकड़ा तो उनको भी बुखार का पता चला—"अरे! तुमको तो सचमुच बुखार है!! तौबा! तौबा!! अजब आदमी हो, मगर मुझे तुम्हारी तरफ से इतमीनान है, कि इसी तरह धीरे-धीरे तुम भी तक़रीरें करने लगोगे। मेरा भी पहले-पहल यही हाल था . . ."

हमने बिस्तर पर लेट कर कम्बल ओढ़ते हुए कहा—"मैं बाज़ आया इस कम्बख्त लीडरी से! जान ही लेकर रहोगे क्या? अब तक दिल उछल रहा है।"

ग़ाजी अब्दुल ग़फूर ने उठते हुए कहा—"पहिला दिन था! इसी तरह लीडर बनाए जाते है!! अब कल के अखबार मे देखना, कि तुम्हारी तकरीर कैसी निकलती है?"

ग़ाजी अब्दुल ग़फूर रवाना हो गए और हम बिस्तर में डूब गए! लाहौलविलाकूवत!!

कान पकड़े

हरे-भरे पहाड़ों के बीच से बल खाती और लहराती हुई सड़कों पर हमारी मोटर नैनीताल से काठगोदाम की तरफ फर्राटे भर रही थी। ठण्डी-ठण्डी, भीगी-भीगी हवा थी। चारों तरफ बादलों का धुआँ था। बहते हुए चश्मे और जल-तरंग बजाते हुए झरने थे। नतीजा यह हुआ कि हमने तरंग में आ कर गुनगुनाना शुरु कर दिया—

"बालम आय बसो मोरे मन में"

अभी दो ही एक तानें ली होंगी, कि बड़े लड़के ने हमको गौर से देखा कि यह पिता जी को आखिर हो क्या गया है। हम चुप हो रहे। मगर फिर जो मोटर ने एक तरफ को घूम कर एक सीनरी दिखाई है, और हवा का एक ठण्ढा झोंका आया है, तो हम फिर लगे अलापने—

"तोसे लागी नजरिया हाँ-हाँ रे"

छोटे लड़के ने पहिले तो, मुँह उठा कर देखा, मगर जब उसका बाप गाता ही रहा, तो उसने कहा—

'तोसे' नहीं, यह कहिए—"वासे लागी नजरिया...।"

मजबूर हो कर हम फिर चुप हो गए। मगर उस मौसम और उस बहार में तो हम क्या, हमारा दिल गा रहा था। जी चाहता था कि काठगोदाम दूर ही होता चला जाय और यह मोटर इसी तरह खड्डों के ऊपर लहराने वाली सड़कों पर यूँ ही नाचती रहे कि ज़रा फ़ुरसत मिली थी और बे-फ़िक्री भी थी। लोग कहते हैं, कि घोड़े बेचकर सोने वाला बड़े मजे की नींद सोता है। हमने, ख़ैर, घोड़े तो नहीं बेचे थे, मगर श्रीमतीजी को नैनीताल पहुँचा कर बच्चों को लिए हुए हम लखनऊ जरूर जा रहे थे। श्रीमतीजी से कुछ दिनों के लिए आज़ाद होना घोड़े बेचने से कम बे-फ़िक्री की बात न थी। अब रात को चाहे बारह बजे घर पहुँचे या एक बजे, कोई पूछने वाला नहीं; और न किसी के डर की वजह से चोरों की तरह एड़ी उठाए पञ्जों के बल अपने घर मे आने की जरूरत! अब कोई 'ब्रिज' खेलने पर रोकने वाला नहीं, चाहे हम दिन-रात 'ब्रिज' खेलते रहें। अब सबेरे तड़के कच्ची नींद से झकझोर कर उठाए जाने की मुसीबत भी कुछ दिनों के लिए टल गई थी, और हम यही सोच रहे थे कि किसी दिन नौ बजे से पहले सो कर न उठा करेंगे। अब हमको किसी की वजह से अपनी नींद हराम करने की क्या ज़रूरत है? बच्चे साथ में ज़रूर थे, मगर वह आखिर बच्चे ही तो थे, और हम फिर भी उनके बाप! लेहाज़ा बच्चों से डरने और बच्चों का ख्याल करने के क्या मानी! दिल ही दिल में प्रोग्राम बना रहे थे—यूँ

जम के ब्रिज खेला जायगा, घर पर दोस्तो का जमघट लगा रहेगा, जश्न होंगे, रँग रेलियाँ मनाई जाएँगी! अरे हाँ, मनुष्य के जीवन का क्या ठीक! क्या जाने कब धर्मपत्नी पहाड़ से लौट आएँ। हम यह प्रोग्राम बना ही रहे थे, कि मोटर एकदम से झटके के साथ रुकी। और अब जो हम देखते है, तो काठगोदाम! न वह ठण्डी हवा, न वह बादल, न वह हरियाली, बल्कि इन सब की जगह तेज़ धूप और पसीना! वह जो किसी ने कहा है न, कि मरता क्या न करता, मजबूरी के दर्जा पर मोटर से उतरे, असबाब उतारा, बच्चों को उतारा और कुली के साथ प्लेटफॉर्म पर आ गए, जहाँ गाड़ी तैयार ही थी। कुली को मज़दूरी देने के लिए जेब मे हाथ जो डालते है, तो बटुआ ग़ायब! जल्दी से दूसरी जेब टटोली, फिर तीसरी, फिर चौथी और इन सब के बाद फिर पहिली जेब से शुरू करके चौथी जेब तक पहुँचे, मगर बटुए का पता नहीं! रास्ते की तमाम ठुमरियाँ और दादरे तो गए भूल, इस वक्त तो पुराना 'सरगम' अलाप रहे थे। हैण्डबेग खोल कर देखा, बँधे हुए बिस्तर को खोल डाला, टिफिन-कैरियर के एक-एक डिब्बे को देखा, एक-एक पूड़ी निकाल कर झाड़ी, तरकारी में तलाश किया, ख़ूबानी और आड़ू के झाबे में देखा, मगर तौबा कीजिए, बटुआ होता तो पता चलता। आखिर सर पकड़ कर बैठ गए और याद करना शुरू किया कि बटुआ आखिर रख कहाँ दिया है।

एकदम से उछले, और सरपट भागे मोटर की तरफ़! मोटर अब तक खड़ी थी। मगर उस पर बटुए का कहीं पता नहीं। सारी रक़म उसीमें थी! वापसी के टिकट उसी मे थे और बग़ैर उसके इस परदेश मे, समझ मे न आता था, कि क्या करें। गाड़ी छुटने का वक़्त अलग क़रीब था, और कुली अलग जान खाए हुए था—"बाबू जी, मज़दूरी मिल जाती, तो और भी मुसाफिरों को देखते।" आख़िर बाप की इस हालत पर बड़े लड़के को रहम आया। उसने पूछा कि आप क्या ढूँढ रहे हैं। हमने बेपरवाही से कहा अपना सर ढूँढ रहे हैं, और क्या! नहीं मालूम, बटुआ कहाँ रख दिया। छोटे लड़के ने कहा—"कौन-सा बटुआ? वह, रुपये वाला? वह तो आपने मम्मी के पास रखवाया था।"

हमने आँखे फाड़ कर कहा—"कब रखवाया था? किस वक़्त?"

बड़े लड़के ने कहा—"जी हाँ, ठीक तो है। जब आप बिस्तरा बाँध रहे थे, उसी वक़्त तो रखवाया था।" हमको भी याद आ गया कि लड़के सच कहते हैं। हमने वाकई रखवाया था और फिर चलते वक़्त न उनको वापस करना याद रहा और न हमने माँगा। सच जानिए, दम निकल कर रह गया! असबाब रक्खा हुआ था आर० के० आर० ट्रेन के इण्टर क्लास में, और हमारा यह हाल था कि न टिकट पास, न टिकट लेने के लिए दाम! टिकट तो टिकट, कुली तक को दाम देने

के लिए न थे। आख़िर हमने बच्चो की जेबे टटोली, तो दोनो बच्चो को मिला कर दो रुपए-चार आने मिल सके। दो रुपए चार आने भी इतने बड़े सफर के लिए कोई रकम मे रकम है! मगर डूबते को तिनके का सहारा ही बहुत था। कुली को दाम दे कर उधर रुखसत किया और इधर हम लगे प्लेट-फॉर्म पर टहल-टहल कर ग़ौर करने कि आखिर अब करे क्या? इस काठगोदाम में तो कोई जान-पहचान का भी न था, जिससे क़र्ज़ ही ले लेते। फिर सोचा कि असबाब ही बेच डाले। मगर ऐसे सामान के खरीददार कही रक्खे हुए तो होते नही, कि आदमी जाकर उनको उठा लाए, और न खरीददारो की कही दूकान होती है कि वही से उनको ले लिया जाय। फिर सोचते-सोचते यह तरकीब समझ मे आई कि शेरवानी मे जो चॉदी के बटन है, वह बेच डाले। मगर फिर याद आ गया कि चॉदी मे है खोट, और उनको अगर किसी अन्धे ने भी खरीदा, तो दो-तीन रुपए से ज़्यादा न देगा। अव्वल तो लोग शायद चोरी का माल समझ कर खरीदते हुए ही डरेगे। चॉदी के बटनो के बाद चॉदी का ख्याल आया, और सिगरेट-केस के दामो का हिसाब भी उसीमें जोड़ दिया, तो सब हिसाब जा कर बैठता था कोई सात-सवा सात रुपए का। इनमें दो रुपए बच्चो वाले मिला देते, तो नौ रुपए हो जाते थे, और लखनऊ तक हम लोग पहुँच सकते थे। मगर फिर वही सवाल था

कि ग्राहक कहाँ से लाएँ। आख़िर दिल ने कहा, सुनो मियाँ साहब, तुमको दिए हैं परमात्मा ने दो-दो बच्चे। अगर इनकी उँगली पकड़ कर किसी से कहोगे कि भई, हम मुसाफिर हैं, यह दो बच्चे साथ है, लखनऊ तक टिकट दिलवा दो तो उम्मीद है कि कोई न कोई सखी-दाता मिल ही जायगा। मगर इसमें भी शक नहीं कि ज़्यादातर लोग दुत्कार ही देते कि साहब, सुनहरी ऐनक को देखिए, इस रेशमी सूट को देखिए, और चले हैं भीख माँगने! ऐसे मोटे भिखारियों को भीख देना पाप समझा जाता है। फिर सवाल यह था कि आखिर करें क्या? शैतान को तो ऐसे मौक़े का इन्तज़ार ही रहता है। आपने चुपके से कान में कहा—"भैया, आखिर इज़्ज़तदार आदमी हो, कैसे किसी के सामने हाथ फैलाओगे, क्यों न चुपके से किसी की जेब काट लो। टिकट के दाम भी निकल आएँगे, और क्या ताज्जुब है कि कुछ फालतू रूपया भी मिल जाय! हम इन तरकीबों पर ग़ौर कर ही रहे थे कि रेल ने सीटी दी, और इस वक़्त जल्दी मे हम यही कर सके कि दोनों लड़कों को उठा कर रेल मे बैठाया, और जब ट्रेन रेंग रही थी, तो हम भी इण्टर क्लास में दाखिल हो चुके थे। अब यह समझें कि रेल कह रही थी 'झुक-झुक' और हमारा दिल हो रहा था धुक-धुक! हर स्टेशन पर मौत का इन्तज़ार करते थे। अब टिकट-

कलेक्टर आता होगा और अब गर्दन मे हाथ दे कर निकालेगा। हर कुली टिकट-कलेक्टर मालूम होता था और हर सौदे वाले की आवाज़ से यही शब्द सुनाई देते थे कि, "टिकट दिखाओ!" कोई कहता था, 'दही-बड़े की चाट', और हम समझते थे कि हमारी हँसी उड़ा रहा है। जब खैरियत के साथ एक स्टेशन गुज़र जाता था, तो अगले स्टेशन का धड़का लगा रहता था, कि देखे अब क्या होता है! आख़िर हमने यह तरकीब निकाली कि ट्रेन के ठहरते ही डिब्बे के बाहर निकल कर प्लेटफॉर्म पर टहलने लगते थे और जब गाड़ी चलती, तो बैठ जाते। मगर मौत तो, आप जानते हैं, भुलावे दे कर आती है। सो यही हुआ कि भौजीपुरा से गाड़ी जिस वक़्त चल दी और हमारी जान में जान आई कि यहाँ भी ख़ैरियत ही रही, तो देखते क्या हैं कि हमारे साथ ही एक आधे अंगरेज़ और आधे हिन्दुस्तानी साहब बहादुर हाथ मे पेन्सिल और मुँह मे सिगरेट लिए आ मौजूद हुए। अब जो हम इनकी सूरत देखते हैं, तो टिकट-चेकर! ताज्जुब है कि हम चीखे क्यों नहीं या ट्रेन से फाँद क्यों न पड़े! हद यह है कि खतरे की जञ्जीर भी न खीची! मगर आँखो के नीचे कुछ अन्धेरा-सा आ गया, दिल धड़कने लगा, पसीना छुट गया और हाथ-पैर ठण्डे-से हो गए! यहाँ तक कि वह वक्त भी आ गया कि टिकट-चेकर ने

मुसाफ़िरों के टिकट देखना शुरु कर दिया, और हमने खिड़की से बाहर मुँह निकाल कर आँखे बन्द कर लीं, और दिल ही दिल में न जाने क्या-क्या पढ़ डाला। इतने में टिकट-चेकर ने हमारे कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"टिकट!"

हमने कहा—"जी, क्या फरमाया?"

उसने फिर कहा—"टिकट! यह बच्चे आप ही के साथ हैं?"

हमने कहा—"जी हाँ, मेरे ही साथ है। टिकट ज़नाने दर्जे में है।"

टिकट-चेकर ने ताज्जुब से कहा—"ज़नाने दर्जे मे! ज़नाने दर्जे का टिकट मर्दाने में ज़रुर सुनते थे, मगर मर्दाने का टिकट ज़नाने दर्जे में आज ही सुना?"

हमने सोचा, तो वाक़ई वह ठीक कह रहा था। कुछ हकला कर बोले—"जी, वह, मतलब...यानी बात यह है कि...कि...जी...हाँ, ज़नाने दर्जे मे हैं।"

टिकट कलेक्टर कुछ शरीफ आदमी मालूम होता था। कहने लगा—"बहुत अच्छा, बरेली मे दिखा दीजिएगा। हमने अपने दिल में कहा, कि चलो बरेली तक तो छुटटी हुई। मगर फिर फ़ौरन ही ख़्याल आया कि जब बरेली पहुँच कर यह भूठ खुलेगा तो टिकट-चेकर को बग़ैर टिकट सफर करने के अलावा इस भूठ पर भी ग़ुस्सा आएगा। हम यह सोच

ही रहे थे और टिकट-चेकर अभी मौजूद ही था कि छोटे साहबज़ादे ने कहा—"मगर पापा, ज़नाने दर्जे में कौन है ? ममी तो नैनीताल मे हैं।" हमने गड़बड़ाकर पहले तो उसको घूरा, फिर क़हक़हा लगा कर बात टालने की कोशिश की और छोटे लड़के को बराबर थोड़ी-थोड़ी देर के बाद घूरते रहे। मगर टिकट-चेकर को कुछ शुबहा हो गया, और शायद यक़ीनन वह हमारी ताक़ मे लग गया। और कही बरेली जङ्क्शन पर सहगल जी न मिल जाएँ, और टिकट का दाम इनसे क़र्ज़ न लें, तो यह समझ लीजिए कि वह टिकट-चेकर जान ही तो ले ले। मगर साहब, अब कान पकड़े कि पहले रुपए का बटुआ जाया करेगा, इसके बाद हम घर से रवाना हुआ करेंगे।

—:o:—

भाई साहब

हमारे भाई साहब भी अजीब चीज हैं। हमसे बडे हैं और हमारे सारे भाई-बहनों से बडे है। पिताजी के स्वर्गवास के बाद चाहिए तो यह था, कि वही घर के बडे-बूढ़े समझे जाते, मगर वह बच्चों से भी गए गुज़रे हैं। यह बात ख़ुद पिताजी भी जानते थे कि उनकी औलाद में बस यही एक ऐसे है, जिनके किए कुछ नहीं हो सकता, बल्कि उनके लिए ख़ुद इस बात की ज़रूरत अब तक है, कि उनके साथ हर वक़्त कोई नौकर रहे, जो उँगली पकड़ कर उनको घुमाने ले जाय, घर आएँ तो उनके कपड़े उतरवा दे, खाना खाने बैठें तो खाना खिला दे। कहने का मतलब यह कि अब वह ख़ुद बाल-बच्चों वाले है, मगर हाल यह है कि शायद ही कोई दिन ऐसा होता हो, जब ख़ुद अपने ही बच्चों से न लड़ते हों। बीबी अलग उनसे आजिज़ रहती है, और हम लोगों को तो ख़ैर हमेशा ही से नाक मे दम है। मुसीबत यह है कि कुछ कह भी तो नहीं सकते। रिश्ते के बड़े भाई हैं, उनको कहे तो कैसे कहे, और न कहें तो आप ही बताइए कि उस दाढ़ीदार बच्चे की शरारतों को रोका कैसे जाय। पड़ोस के किसी बच्चे ने पतंग बढ़ाई, आपने जो पतंग को देखा, तो दौड़े कोठे पर और लंगड़ मार

कर पतंग गिरा ली ! अब वह पतंग उड़ाने वाला बच्चा अपने यहाँ से गालियाँ दे रहा है, आप अपनी छत से खड़े लड़ रहे है। बीवी ने आकर मना किया, शरम दिखाई, बुरा-भला कहा, तो लगे बैठ कर रोने ? हम लोगो में से कोई समझाने पहुँचा, तो जिस तरह लाडले बच्चे माँ-बाप को देख कर और भी रोते हैं; उसी तरह उन्होंने और भी फूट फूट-कर रोना शुरू कर दिया। अब कोई छोटा भाई समझा रहा है, कोई बहला रहा है, कोई दुलार कर रहा है, कोई पतंग ला देने का वादा कर रहा है, और बीच में आप बैठे रो रहे हैं—इस तरह कि आँसुओं से मूछे और दाढ़ी सब बरसात का छप्पर बन कर रह गई हैं। अगर किसी ने कह दिया कि भाई साहब, आपकी उम्र इन बातों की नहीं है, भला इस उम्र मे भी कोई इस तरह पतंग उड़ाता है, तो साहब आ गई उसकी शामत; और उलझ पड़े उससे कि तुम भी तो टेनिस खेलते हो, तुम भी तो ताश खेलते हो। अब अगर उनको टेनिस और पतंग का फर्क कोई समझाना चाहे, तो नामुमकिन है, और न वह ताश और पतंग में कोई फ़र्क़ समझ सकते है। घण्टों बहस करेंगे, और अगर आपने ज़्यादा बहस की तो आखिर में वह इस तरह रोएँगे कि फिर सँभाले न सँभलेंगे।

लोगों का ख्याल है कि दिमाग़ ख़राब है, मगर डॉक्टर कहते हैं कि दिमाग़ बिलकुल ठीक है, कोई ख़राबी नहीं। और हम सब भी कहते हैं कि दिमाग़ में वाकई खराबी नहीं है, अलवत्ता

बचपन अब तक नहीं गया है और न सारी उम्र जा सकता है ! जिन्दगी भर उनका यही हाल रहा। अब हद यह है कि बारह बरस की उम्र तक उनको अपने हाथ से भोजन करना नहीं आता था। पन्द्रह बरस के जब हुए, तो पण्डितजी के पास अ आ इ ई उ ऊ पढ़ने बैठाए गये। सोलह बरस के जब थे, तो सौ तक की गिनती याद कर ली थी और अठारह बरस की उम्र तक इस पैर का जूता उस पैर में और उस पैर का जूता इस पैर मे पहन लिया करते थे ? बीस बरस की उम्र मे शादी हुई, तो ससुराल में साली-सलहज के मजाक पर रो कर पैर पटकते हुए घर को भागे थे ! ख़ैर, यह सब बाते तो आगे चल कर बताई जाएँगी, इस मज़मून मे तो हम यह बताना चाहते हैं, कि हमारे भाई साहब हैं क्या चीज। भाई साहब असल मे हमारे माता-पिता की पहिली जीती-जागती औलाद है। इनसे पहिले तीन बच्चे मर चुके थे, और तीन बच्चो के मर चुकने के बाद कई बरस तक सन्नाटा रहा था, इसलिए अब जो भाई साहब पैदा हुए, तो उनको ऐसा समझा गया, जैसे अन्धो को आँखे मिल गई हो। लाड़-प्यार मे पाले गए, हर बात का चोचला हुआ ! अन्नाएँ और खिलाइयाँ (धाय, दाइयाँ) सब उनके लिए नौकर रक्खी गईं। उनकी एक छींक पर एक सिविल सर्जन बुला कर खड़ा कर दिया जाता था। माता-पिता उन्ही को देख कर जीते थे। यहाँ तक कि वह जितना-जितना बढ़ते गए, वह लाड़-प्यार भी बढ़ता गया। जो बात उन्होने कही, वह फौरन पूरी की गई। उनके

ज़रा से इशारे पर घर-भर नाचने लगता था। उनके रोने की ज़रा-सी आवाज़ सुन कर पिताजी कचेहरी-अदालत सब छोड़-छाड़ घर में आ मौजूद होते थे। उन्होंने अगर लट्टू देख कर कहा कि हम भी लट्टू लेंगे, तो अब चले आ रहे हैं तरह-तरह के लट्टू! कोई विलायती है, तो कोई देशी है, कोई दो आने का है, तो कोई पाँच रूपए का। अब भाई साहब हैं कि लट्टू नचा रहे हैं, और माता-पिता हैं, कि बाग़-बाग़ हुए जाते हैं, कि परमात्मा ने उनके पुत्र को इस क़ाबिल तो किया, कि वह लट्टू नचाए। उन्होंने सड़क पर कुछ बदमाश आवारा लड़कों को गोलियाँ खेलते हुए देख लिया, बस फिर क्या था, घर में आ कर मचल गए कि हम भी गोलियाँ लेंगे। माता जी ने सुना, वह दौड़ी पिताजी से कहने कि लल्ला गोलियाँ खेलने को माँग रहा है। पिताजी ख़ुद ही यह आवाज़ सुन कर आधी दाढ़ी बना कर आधी यूँ ही छोड़ कर उसी तरफ़ आ रहे थे। पुत्र को जो मचलते हुए देखा, तो उसी तरह ख़ुद बाहर निकल गए, और देखते ही देखते गोलियाँ भी आ गईं! यह वही पिता जी हैं, जो गोलियाँ खेलने के दुश्मन हैं, लट्टू नचाने को बहुत नीच क़िस्म के बच्चों का खेल मानते हैं, गुल्ली डण्डा खेलते हुए अगर हम लोगों को देख लेते, तो ज़मीन आसमान एक कर देते, और शायद अपना डण्डा इस तरह सँभालते कि हम ख़ुद गुल्ली बने हुए नज़र आते! मगर भाई साहब के साथ उन्होंने ख़ुद गुल्ली-डण्डा खेला; भाई साहब के साथ वह ख़ुद लट्टू नचाया

किए, भाई साहब के साथ गोलियाँ खेलने को वह कभी बुरा न समझे।

इस लाड़-प्यार का नतीजा यही हुआ कि आदतें बिड़गती चली गईं, और फिर ऐसा बिगड़े कि .खुद माता-पिता भी उनको ठीक न कर सके। आखिर में वह एक तमाशा बन कर रह गए! पढ़ाने-लिखाने की बहुत कोशिशे की गईं, मगर तौबा कीजिए, बुड्ढे तोते भी कहीं पढ़ा करते हैं। पढ़ाने-लिखाने की जो उम्र थी, उसमें तो हमारे भाई साहब को लोरियाँ सुना-सुना कर सुलाया जाता था, और वह कहानियाँ सुना करते थे। जिस उम्र में उनको कम से कम एण्ट्रेन्स पास कर लेना चाहिए था, उस उम्र मे माता-पिता के प्रेम ने लाड़ले को इस काबिल समझा कि सिर्फ अ आ इ ई-उ ऊ अगर पढ़ लिया करे, तो कोई हर्ज की बात नहीं है। जब उनको कायदे से बी० ए० होना चाहिए था, उस व.क्त वह स्लेट पर सौ तक की गिनती बहुत कोशिश करके लिखा करते थे; और जिस वक्त हम लोग, उनके छोटे भाई, ऐण्ट्रेन्स पास हो कर कॉलेज मे भरती किए गए है, उस व.क्त भाई साहब के लिए अगर किसी थर्ड क्लास के हेडमास्टर की .खुशामद की जाती, तो वह तीसरे दर्जे में ले सकता था, इससे .ज्यादा नही। अब आप .खुद समझ लीजिए, कि भाई साहब ने क्या कुछ पढ़ा-लिखा

होगा! हाँ, यह ज़रूर है कि पतंग लड़ाने में बड़े-बड़े उस्ताद तक उनका मुक़ाबिला नहीं कर सकते! कहानियाँ उनको ऐसी-ऐसी याद हैं, कि क्या किसी अफ्यूनी को याद होगी! घर में घुस कर बैठने की ऐसी आदत है, कि बहू-बेटियाँ भी उनसे हार जायँ। मगर आप अगर यह चाहें कि वह बैठे-बैठे ज़मीदारी ही का काम संभाल लें तो यह भी उनके बस का रोग नहीं है। ख़ैर, यह तो बहुत बड़ा काम है, उनसे तो अगर यह कह दिया जाय, कि धोबी को कपड़े देने और उससे कपड़े लेने का ज़रा-सा काम अपने ज़िम्मे ले लें, तो वह थोड़े ही दिनों मे सारी की सारी ज़मीदारी और घर की पूँजी, जो कुछ भी है, धोबी के घर पहुँचा देंगे। नौकर उनको ख़ूब जी खोल-खोल कर लूटते हैं, और उनको कभी पता भी नहीं चलता, कि रूपया दे कर चार आने की अगर कोई चीज़ मँगाई है, तो बाक़ी कितने दाम वापस मिलेंगे। इसमे दोनो बाते हैं—बेपरवाही भी और जहालत भी। आदतें तो पड़ी हुई हैं रुपए को पानी की तरह बहाने की, और अब आख़िर इस रुपए के एक-एक पैसे को दाँत से क्यों कर पकड़ें!

लाड़-प्यार में बिगाड़ने को तो बिगाड़ दिया, मगर जब लाडले के यह ढंग देखे और लाड़-प्यार का बनाया हुआ यह डरावना रुप सामने आया, तो पिताजी भी सर

पर हाथ रख कर रोते थे और माताजी भी आठ-आठ आँसू बहाती थीं, कि यह बेड़ा कैसे पार लगेगा! पिताजी हम लोगों को बिठा-बिठा कर समझाते थे, कि मेरे बाद तुम्हारा यह बड़ा भाई तो किसी काम का होगा नहीं, छोटे भाइयों को घर-बार भी सँभालना होगा और उसको भी अपना छोटा भाई समझ कर सँभालना पड़ेगा। वह तो इधर रो-रो कर हम लोगों को यह बातें समझा रहे हैं, और उधर भाई साहब हैं कि 'छोटा-सा बलमा मोरा आँगना में गुल्ली खेले' की तरह किसी न किसी खेल में लगे हुए हैं! न उनको अपनी उम्र का होश, न अपनी बड़ाई का ख्याल!

माता-पिता तो दोनों एक-एक करके स्वर्गवासी हो गए, और यह मुसीबत हमारे लिए रह गई, कि हम उनके बिगाड़े हुए खेल को बनाएँ। पिताजी कहने को तो कह गए कि इसको अपने छोटे भाई के समान सँभालना, मगर आप ही बताइए कि जो बड़ा हो, उसको छोटा क्यों कर बनाया जाय? अब मुसीबत यह कि वह बड़े भी हैं, और बच्चों से गए-गुजरे भी! अब उनको कौन रोके, कि आप कटी हुई कनकैया देख कर, नंगे सर और नंगे पैर सड़कों पर न दौड़ा कीजिए; उनसे कौन कहे कि आप नौकरों के साथ बैठ कर हुक़्का न पिया कीजिए, उनको कौन समझाए कि आप नौटंकी देखने न जाया कीजिए; उनको कौन मना करे कि आप रामदाने की लैया सड़क पर न खाया कीजिए; और उनका मुँह कौन बन्द करे कि आप अच्छी-अच्छी

कविताएँ पढ़ने की जगह तुंगाड़े वाले गाने रास्ते में गाते हुए न निकला कीजिए ? अगर हममें से कोई रोकता है, तो वह ख़ुद डॉट देते हैं, कि तुम लोगो का दिमाग़ तो अंग्रेज़ी किताबे चर गई हैं, बड़े साहब बने घूमते हो ; गिट-पिट गिट-पिट करते हो, 'गुड मानीर' करना सीख लिया और भूल गए अपनी असलियत को ! इसका मतलब यह है कि ख़ुद उनको हम लोगों से यह शिकायत है, कि हम भलेमानुसों की तरह क्यों रहते-सहते है और उन्हीं की तरह बाल में चमेली का तेल डाल कर, लच्छेदार कंघी करके, आँखों मे सुरमा लगा कर, गालो में पान ठूँस कर, कढ़े हुए फूलदार कुर्ते पर एक रेशमी वास्कट पहने, महीन-सी धोती बाँधे, पैरो में दिल्ली वाला काम-दार जूता पहने और एक रेशमी रुमाल हिलाते क्यो नही फिरते है। उनकी इस चाल-ढाल पर हमको तो सब के सामने यह कहते हुए भी शर्म आती है, कि यह हमारे ही सगे बडे भाई है ! मगर वह हैं, कि जब कभी उन्होने यह देखा कि हमारे मिलने वालो में से चार भले आदमी आ गए है, तो ज़रुर वहाँ आ मौजूद होते हैं और कोई न कोई बात ऐसी कह देते है, कि यहाँ तो घड़ो पानी पड़ जाता है, मगर न जाने हमारे दोस्त अपने दिल मे क्या कहते होंगे, कि यह कैसे बड़े भाई हैं, और अगर यह सचमुच बड़े भाई हैं, तो यह सब लोग आखिर हैं किस वंश के ! फिर एक मुसीबत यह भी है कि हम लोगो के पास तो बैठते है सब पढ़े-लिखे भलेमानुस—कोई

डॉक्टर हैं, तो कोई वकील; कोई एडीटर हैं, तो कोई कॉन्सिल के मेम्बर, और उधर आ गया भाई साहब का इक्का वाला दोस्त या कोई नाटक का बहुरूपिया दोस्त, या किसी नौटंकी का नगाड़ा बजाने वाला दोस्त ! अब भाई साहब है कि उसके लिए बिछे जाते हैं । आवभगत ही की जाय, तो कोई बुरी बात नहीं, मगर वहाँ फौरन ही शुरु हो जाता है वही लोफरों वाला मज़ाक और 'अबे-तबे' वाली दिल्लगी ! नतीजा यह होता है कि हम अपने दोस्तों से आँखे चार करने के क़ाबिल नहीं रह जाते । मगर करें तो क्या करें ? न सगे भाई को छोड़ा जा सकता है, न उनको ब.गैर छोड़े जिन्दा रहना आसान नज़र आता है । यह सब कुछ तो यूँ ही लिख दिया है कि आप भाई साहब को थोड़ा-बहुत समझ ले, नहीं तो भाई साहब की जिन्दगी तो एक अच्छा-खासा तमाशा है ! इस तमाशे की एक-एक झलक देखने के काबिल है !!

* * *

भाई साहब की तालीम

भाई साहब जब अपनी खिलाइयों की गोद में पन्द्रह बरस के हो गए, तो एक दिन पिता जी को बैठे-बिठाए, न जाने कैसे, उनके पढ़ाने-लिखाने का ख्याल पैदा हुआ। पहिले तो अखबार रख कर मन ही मन कुछ सोच-विचार करते रहे, फिर माता जी को आवाज़ दी। वह अपना सरौता, डली (सुपारी) ले कर जब आ गईं तो पिता जी ने उनसे कहा—"ज़रा बैठ जाओ, मुझे तुमसे कुछ कहना है।"

माता जी ने पिताजी की मसहरी के पास ही कुर्सी घसीट ली और बैठ कर डली काटते हुए कहा—"क्यों क्या कहते हो? कौन-सी भेद की बात है!"

पिता जी ने बात काटते हुए कहा—"भेद की बात नहीं, पर मैं यह पूछता हूँ, कि आखिर यह रज्जन (भाई साहब का नाम राजेन्द्रकुमार है। उनको प्यार मे पिताजी 'रज्जन' कहते थे। राजेन्द्र को 'रज्जन' माताजी ने बनाया था, और यही उनका नाम पड़ गया था) कब तक खेल-कूद मे पड़ा रहेगा?"

माताजी ने बात समझे बिना जल्दी से कहा—"उसके खेल-कूद के दिन ही है। अभी नहीं खेलेगा, तो क्या

बूढ़ा हो कर खेलेगा! परमात्मा की यही कृपा है, कि उसने अँधेरे घर के लिए दीपक तो दिया। नहीं तो हमारे भाग्य ऐसे कहाँ थे, कि हमारा पुत्र आज खेलता हुआ दिखाई दे!"

पिता जी ने कुछ उलझ कर कहा—"वह तो ठीक है। परमेश्वर ने हमको मन का सुख दिया है। उसका हज़ार-हज़ार अहसान है, पर मैं यह कह रहा हूँ, कि अब उसे पढ़ाने-लिखाने का प्रबन्ध होना चाहिए। सारा समय खेल-कूद में बिताना ठीक नहीं है। देखो, नरेन्द्र (यह हमारा नाम है) और सुरेन्द्र (यह हमसे छोटे भाई का नाम है) दोनों उससे छोटे हैं, पर उनको ख़ुद ही पुस्तकों का चाव है।"

माता जी ने बेपरवाही से कहा—"ऊँह! तो कौन-सा वह इतना बड़ा हो गया है कि उसके पढ़ने की ऐसी चिन्ता की जाये! जिये-बचेगा तो पढ़-लिख भी जायगा।"

पिताजी ने कहा—"तुम समझती नहीं हो। अगर खेल-कूद का हो कर रह गया, तो फिर पढ़ने-लिखने में मन नहीं लग सकता। मैं तो जानूँ कि अब बहुत जल्दी कोई मास्टर-वास्टर रख दिया जाय। कुछ तो पढ़े आख़िर।"

माता जी ने एक जंभाई लेते हुए कहा—"हाँ, हाँ, रख देना कोई मास्टर भी। मैं तो दिन-रात यही देख रही हूँ, कि वह दुबला ही होता चला जा रहा है। रात ही को दो मर्तबा सोते में छींका! आज सबेरे मैंने उसकी खाँसी भी सुनी थी। मैं तो जबसे यही सोच रही हूँ कि तुम ज़रा बैठो तो कहूँ

किसी डॉक्टर-वैद्य ही को दिखा दो इसे, कि यह बात क्या है?

पिता जी भी खाँसी की आवाज़ और दो छींकों का, जो सोते में भाई साहब को आई थी, हाल सुन कर कुछ चुप से हो गए। मगर डॉक्टर-वैद्य के ख़्याल के साथ ही साथ उनके मन में मास्टर का विचार भी रहा, और आ ख़िर जब डॉक्टर आकर अपनी फीस के बदले एक नुस्खा लिख गया, तो उसके थोड़े ही दिनो के बाद हम सबको पढ़ाने के लिए एक पण्डितजी भी पिता जी ने रख ही लिया और हम दो छोटे भाइयों के साथ भाई साहब को भी पढ़ने बैठा दिया गया। इस तरह हम तीनो भाइयों की पढ़ाई साथ-साथ शुरु हो गई।

पण्डितजी रोज़ पढ़ाने आया करते थे। दिन-रात के चौबीस घण्टो में दो घण्टे पढ़ाई के लिए थे, वाकी खेल-कूद और आराम के लिए। मगर यही दो घण्टे भाई साहब के लिए मुसीबत के हुआ करते थे। सवेरे से तो लंगड़-पेंच और डोर-कनकौआ लिए उचकते फिरते थे, मगर जहाँ उन्होंने देखा कि पण्डितजी के आने का व.क्त हुआ है और घण्टे-आध घण्टे के बाद पण्डितजी आने वाले हैं, बस वह नए-नए वहाने ढूँढना शुरु कर देते थे। कभी तो कह दिया कि सिर मे बड़े जोर का दर्द हो रहा है, और पड़ रहे। अव कोई उनका सिर दवा रहा है, कोई डॉक्टर के यहाँ जा रहा है, तो कोई दवा ला रहा है। माताजी अलग परेशान है,

पिताजी को अलग फिक्र है, कि उनके 'लाल' को यह क्या हो गया ? और वह हैं, कि दर्द के मारे मछली की तरह तड़प रहे है ! अब ऐसी हालत में किस की मजाल, कि उनसे पढ़ने के लिए कहे ? मगर जहाँ पण्डितजी हम दोनों छोटे भाइयों को पढ़ा कर गए, भाई साहब का दर्द बिलकुल जाता रहा और वह फिर बिस्तर से उठ कर माँझे की चर्खी और पतंग ले कर कोठे पर चढ़ गए । दूसरे दिन पण्डितजी के आने के पहिले ही उनको दर्द का दौरा फिर हुआ और फिर वही दौड़-धूप शुरु हुई। माताजी ने डॉक्टर से कहलवा दिया कि रोज़ यह दर्द ठीक तीन बजे उठता है । पिताजी ने डॉक्टर को लिखा कि दर्द ने एक खास व.क्त मुकर्रर कर लिया है ; कल भी इसी व.क्त उठा था । डॉक्टर हैरान था कि किस्सा क्या है ! मगर हम जानते थे, कि अगर पण्डितजी तीन बजे आना छोड़ कर बारह बजे आने लगे, तो उस दर्द का व.क्त भी बदल जाय । मतलब कहने का यह, कि भाई साहब के तो सिर में दर्द होता रहा, पेट में मरोड़ होती रही, सीने में टीसें उठती रहीं और हम दोनों भाई पढ़ते रहे । कभी-कभी दस-पाँच दिन के बाद अगर भाई साहब पण्डितजी के पास आते भी थे, तो इस तरह कि जैसे बिलकुल कोरे हों । उनको फिर से किताब शुरु कराई जाती थी, जिसको दो-एक दिन की, तीन बजे से पाँच बजे तक वाली बीमारियों में, वह फिर भूल जाते थे । पण्डितजी भी आखिर आदमी थे, धूप में बाल सफेद नहीं किए थे, हज़ारों लड़कों को पढ़ा चुके थे और

लड़कों की इन चालों को .खूब समझते थे। ऐसी-ऐसी बहानेबाजियों के लाखों तमाशे देखे हुए थे। एक दिन जो भाई साहब पण्डितजी के पास पढ़ने को आए और पढ़ा हुआ सारा सबक साफ निकला, एक चीज़ भी याद नहीं पाई गई, तो पण्डितजी ने हिम्मत से काम ले कर कहा कि "देखो जी, यह चालबाजियाँ तुम अपने माता-पिता ही को दिखा सकते हो और वही इसका यकीन कर सकते है कि तुम बीमार थे। मैं तो यह सारी बीमारी एक दिन में डण्डों से भगा दूँगा!"

भाई साहब ने भला ऐसी खरी-खरी बातें किसी से कब सुनी होंगी! एक दम से चौंक ही तो पड़े, कि यह बुड्ढा कह क्या रहा है। बौखला कर बोले—"तो क्या हम बहाने करते हैं? हम झूठ बोलते है?"

पण्डितजी ने जरा डाँट बता कर कहा—"झूठे तो तुम परले दर्जे के हो। मगर यह बहाने मुझसे न चलेंगे।"

भाई साहब भला इन बड़े मियाँ की कब सुनने वाले थे। अकड़ कर बोले—"अच्छा तो जाइए, हम आपसे नहीं पढ़ते।"

पण्डितजी ने कान पकड़ कर जो एक चाँटा दिया है, तो कयामत आ गई! पन्द्रह बरस के इस छोटे-से बच्चे ने वह फैल मचाया है, कि घर-भर को जमा कर लिया। उनका यह ख़्याल था कि आज अगर चूक हो गई, तो जिन्दगी-भर पिटना पड़ेगा, नहीं तो आज ही यह किस्सा खत्म है। .खुद पण्डितजी के हाथों के तोते उड़ गए, और वह बेचारे चोर-से हो कर

रह गए ! आख़िर माता जी ने भाई साहब को घर में बुला लिया। भाई साहब ने घर में जा कर माताजी को देखा, तो और भी फूट-फूट कर रोना शुरु कर दिया। माताजी की आँखों में ख़ून उतर आया था, कि उनके इस लाड़-प्यार से पाले हुए लाल को इस मूर्ख ने कैसा मारा है। भाई साहब को देखते ही बोली—"न, लाल न। आने दे पिताजी को, जिनको बड़ा पढ़ाने का शौक था, और इसी दिन के लिए इस क़साई को ला कर रक्खा था, कि मेरे लाल को इस बुरी तरह मारे! सारा गाल लाल हो कर रह गया है, रोते-रोते हिचकियाँ बँध गई है। एक तो रोज़ का वह ख़ुद बीमार उस पर यह मार पड़े ! मैंने भर पाया ऐसे पढ़ाने से...!"

पिताजी ने जो यह शोर-गुल सुना, तो वह भी ऐनक लगा कर दौड़े कि आखिर किस्सा क्या है। यहाँ ख़ुद आ कर देखते हैं, तो भाई साहब रोते-रोते बे-हाल हुए जाते हैं, और उनके साथ ही माताजी भी रो रही हैं। पिताजी ने बड़ी डरी हुई आवाज़ में पुकारा—"रञ्जन...बाबू..राजेन्द्र ..रञ्जन !" मगर रञ्जन ने और भी मुँह खोल दिया, और आँखों से गंगा-जमना बहा कर रख दी। आख़िर माताजी ने अपने आँसू पोंछ कर कहा—"इसी दिन के लिए पढ़ाने को बैठाया था न! देख लिया बेटे का यह हाल। अब तो कलेजे में ठण्डक पड़ी ! जिसको हमने कभी फूल की छड़ी भी न छुआई थी, उस को इस कसाई मास्टर ने कैसा मारा है!"

पिता जी ने एकदम चौंक कर कहा—"मारा है? मास्टर ने इनको मारा है? काहे से मारा है...?"

माता जी ने गाल की तरफ इशारा करके कहा—"ऐसा कोई मारता है, कि पाँचो उँगलियाँ बन गईं!" हालाँकि पण्डितजी बेचारे की एक उँगली कटी हुई थी, अगर हलके-से चाँटे से उँगलियाँ बन भी सकती थीं, तो पाँच नहीं, बल्कि सिर्फ चार। पिता जी ने गाल पर उँगलियों के निशान ढूँढे, मगर न मिले फिर भी माताजी का कहना कैसे झूठ हो सकता था? दूसरे उनके रञ्जन इस बुरी तरह रो रहे थे! पिताजी ने अपने को बहुत सँभाला, मगर आखिर बटुए से पाँच रुपए निकले और पण्डितजी के पास आकर बोले—"धन्य हो महाराज! इसी तरह बालक पढ़ाए जाते है!! जान पड़ता है, कि आप के कोई बच्चा नहीं है, नहीं तो दूसरे के बच्चे को इस बुरी तरह न मारते। यह लीजिए अपना हिसाब, और कृपा कीजिए हमारे हाल पर!"

पण्डितजी बेचारे ख़ुद सन्नाटे मे थे, कि यह एकदम से हुआ क्या! अगर उनको मालूम होता कि भाई साहब का गाल बारुद का बना हुआ है जो ऐसी आग लगा सकता है, तो वह शायद कुछ न बोलते। हकला-हकला कर पिताजी से कुछ कहने की कोशिश की, मगर इस वक्त पिताजी उनकी कब सुनने वाले थे। हाथ जोड़ कर कहने लगे—"बस पण्डितजी, भर पाया। आप कल से यहाँ आने का कष्ट न उठाएँ।"

पण्डितजी के अलग हो जाने के बाद कुछ दिनों तो मास्टर

का कुछ ठीक ही न हुआ। आखिर एक और मास्टर साहब ढूँढे गए। उनके आने के बाद ही भाई साहब के सिर के दर्द का पुराना मर्ज़ फिर उभड़ आया। यह मास्टर साहब भी एक महीने से ज़्यादा न रह सके, और उनको भाई साहब ने ख़ुद निकाल दिया। अब यह होने लगा कि हर महीने की तनख्वाह एक नए मास्टर को मिलती थी, और भाई साहब उसको दूसरे महीने की तनख्वाह लेने के क़ाबिल न रखते थे। ख़ैर, इन बातों में उनका तो कुछ बिगड़ नहीं रहा था, इसलिए, कि बिगड़ता तो जब, कि कुछ बना भी होता; मगर हम दो छोटे भाइयों की पढ़ाई का बड़ा नुक़सान हो रहा था। हम दोनो अपनी मेहनत से ख़ुद ही पढ़ रहे थे, और आखिर जब बीसों मास्टरों की कोशिशों के बाद भाई साहब १०० तक की गिनती स्लेट पर लिखना सीख गए, तो हम दोनों छोटे भाइयों को मास्टर साहब के कहने से पिताजी ने आठवे दर्जे मे भरती करा दिया। यहाँ तक कि दो साल के बाद अब हमारे भाई साहब दस तक के पहाड़े याद कर रहे थे, हम दोनों छोटे भाइयों ने इन्ट्रेन्स का इम्तहान दिया और दोनो फर्स्ट डिवीजन मे पास हो गए! यह था वह वक़्त, जब भाई साहब के अनपढ़ रह जाने का ख्याल आया और माताजी ने भी कुछ सोचा कि यह सब कुछ लाड़-प्यार का नतीजा है। मगर अब पछताने से क्या होता था? भाई साहब के पढ़ने की सारी उम्र दस तक के पहाड़ों मे बीत चुकी थी!

*　　*　　*

कान पकड़े

लेखक :

श्री० शौकत थानवी